ISBN 978-93-85145-10-0

वैभाषिकी

आधुनिक विषय विभागीय शोधलेखग्रन्थ

२०१६-१७

संरक्षक

प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री

प्रधानसम्पादक

प्रो. सुदेश कुमार शर्मा

सम्पादकमण्डल

डॉ. (श्रीमती) गीता दुबे

डॉ. (श्रीमती) श्वेता सूद

डॉ. (श्रीमती) सुमन सिंह

डॉ. (श्रीमती) मिनाक्षी ब-हाटे

श्री. शंकर आंधळे

सुश्री वैशाली निवडुंगे

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

(मानित विश्वविद्यालय)

NAAC द्वारा 'A' श्रेणी प्राप्त

क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ

विद्याविहार, मुम्बई - ४०० ०७७

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन ।

ISBN **978-93-85145-10-0**
गन्थनाम 'वैभाषिकी' ।
प्रकाशक राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ, मुम्बई, महाराष्ट्र ।
संरक्षक **प्रो. परमेश्वर नारायण शास्त्री**
कुलपति,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली ।
प्रधान सम्पादक **प्रो. सुदेश कुमार शर्मा**
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ, मुम्बई, महाराष्ट्र ।
सम्पादक मण्डल डॉ. (श्रीमती) गीता दुबे
डॉ. (श्रीमती) श्वेता सूद
डॉ. (श्रीमती) सुमन सिंह
डॉ. (श्रीमती) मिनाक्षी ब-हाटे
श्री. शंकर आंधळे
सुश्री वैशाली निवडुंगे
प्रकाशन वर्ष 2016-17
मुखपृष्ठ, चित्रसंयाजन सुश्री वैशाली निवडुंगे
प्रति 50
मूल्य रू. 495/-
अक्षर संयोजन श्री सचिन शिन्दे
मुद्रक **शिवालिक प्रकाशन,**
27/16, शक्ति नगर,
नई दिल्ली - 110007

❖❖❖

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
भारत सरकार के अधीन संचालित)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
213, पॉलिटेक्निक भवन, (द्वितीय तल)
विद्याविहार, पूर्व, मुम्बई - 400 077
NAAC द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त

RASHTRIYA SANSKRIT SANSKTHAN
Deemed to be University
(Under Ministry of HRD, Govt. of India)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeeth
213, Polytechnic Building, (IInd Floor)
Vidyavihar, East, Mumbai – 400 077
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

शुभाशंसा

बहुत हर्ष को बात है कि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.) क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ के आधुनिक विषय विभाग द्वारा 'वैभाषिकी' नामक शोधलेखग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है । इस ग्रन्थ में हिन्दी, मराठी एवं अंग्रेजी इन तीन भाषाओं में शोधछात्रों एवं विद्वानों के द्वारा निबद्ध लेखों का संपादन एवं प्रकाशन किया जा रहा है । बहुत सारे विषय जैसे - सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, भाषावैज्ञानिक एवं संगणकीय लेखों से मण्डित यह शोधलेखग्रन्थ छात्रों, गवेषकों, अध्यापकों एवं समीक्षकों के लिए अतीव उपयोगी ग्रन्थ है । मैं इस ग्रन्थ की सफलता को कामना करता हूँ तथा संपादक मण्डल को इस सारस्वत कार्य के लिए बहुत-बहुत साधुवाद प्रदान करता हूँ ।

(प्रो. सुदेशकुमारशर्मा)

सम्पादकीय

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.) देश के विभिन्न भागों में ग्यारह (11) परिसरों में व्याप्त है । इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है । उन्हीं ग्यारह पसिरों में से एक परिसर क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ नाम से विद्याविहार, मुम्बई में अपनी कुछ विशेषताओं से विभूषित है । मुम्बई परिसर में पारम्परिक पद्धति से संस्कृत शिक्षण के साथ ही आधुनिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती है । इस परिसर में संस्कृत के व्याकरण विभाग, साहित्य विभाग, ज्योतिष विभाग, शिक्षाशास्त्र विभाग के साथ ही आधुनिक विभाग भी एक सम्पन्न विभाग है । आधुनिक विभाग के अन्तगर्त हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, राजनीति विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, संगणक एवं पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन-अध्यापन किया जाता है ।

हमें यह बताते हुए प्रसन्नता हो रही है कि आधुनिक विषय विभाग द्वारा शोधलेखग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है । इस **वैभाषिकी** शोधलेखग्रन्थ हिन्दी, अंग्रेजी एवं मराठी भाषाओं में उपनिबद्ध है ।

भारत वर्ष विविध भाषा भाषियों का देश है । इसी को ध्यान में रखते हुए परिसर में अध्ययनरत सभी छात्रों का विविध भाषा सम्बन्धित समुचित विकास हो एवं समस्त भारतीय भाषाओं के प्रति इनके मन में सम्मान की भावना हो, एतदर्थ इस पुस्तक को तीन भाषाओं मं प्रकाशित किया जा रहा है ।

इस शोध पुस्तक के प्रकाशन में परिसर प्राचार्य प्रो. सुदेश कुमार शर्मा का हमें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है । अत: उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं । साथ ही व्याकरण विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. प्रकाशचन्द्र, साहित्य विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. ई. एम्. राजन्, शिक्षाशास्त्र विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. मदन मोहन झा, व्याकरण विभाग के वरिष्ठ आचार्य प्रो. बोध कुमार झा जी के साथ अन्य विभागीय सहयोगी प्राध्यापकों का जो उत्साह वर्धन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उनके प्रति व्यक्तिश: आभार व्यक्त करते हं । पुस्तक प्रकाशन में टंकण मुद्रण कार्य हेतु श्री. सचिन शिन्दे का जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए साधुवाद देते हैं । इन पुस्तक में जिन विद्वानों एवं विदुषियों का लेख प्रकाशित हुआ है उन सभी के प्रति विद्यापीठ प्रशासन एवं संपादक मण्डल की ओर से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की जाती है । साथ ही सभी लेखकों का सहयोग आगे भी प्राप्त होता रहेगा ऐसी कामना करते हैं ।

सम्पादक

★★★

विषयानुक्रमणिका

क्र	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1	Globalization of Culture : Recent Trends in Literture	Prof. Sharat Chander Sharma	7
2	भक्तिकाव्य का प्रदेय	डॉ. जयप्रकाश नारायण सिंह	17
3	कृष्ण भक्तिकाव्य में भाषा सौन्दर्य	डॉ (श्रीमती) मिथिलेश शर्मा	31
4	गोस्वामी तुलसीदास की प्रासंगिकता	डॉ. (श्रीमती) गीता दुबे	37
5	Gandhian Theme in Raja Rao's Kanthapura	Dr. (Smt.) Shweta Sood	42
6	वर्तमान जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की भूमिका	डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार	48
7	भारतीय दर्शन में योग	डॉ. प्रकाश वर्मा (सोनी)	54
8	कबीरदास का भक्तिदर्शन	डॉ. सुनील कुमार शर्मा	64
9	दृक्श्राव्य माध्यमांसाठी लेखन	डॉ. (श्रीमती) मिनाक्षी ब-हाटे	73
10	वर्चस्व की संस्कृति का प्रतिपक्ष रचता कवि : कबीर	प्रा. दिनेश पाठक	77
11	Effect of Yoga and Physical Education on Human Health	Shri. Ramachandra H. D.	85
12	शारीरिक शिक्षणात आरोग्याचे महत्त्व	श्री. शंकर बाबुराव आंधळे	92
13	Role of "C-Language" To Develop A Computer Programs	Miss Vaishali Nivdunge	104
14	आयुर्वेद में योग का स्वरूप	डॉ. रविकुमार (शास्त्री)	110
15	कबीरदास के भक्तिकाव्य में विद्रोह भावना की प्रासंगिकता	श्रीमती पूजा हेमकुमार अलापुरिया	117
16	Jhumpa Lahiri and Globalization of Culture in Interpreter of Maladies	Smt. Sheetal Nage	122
17	मराठी भाषेचा अर्थविचार	श्री. सुरेश चेमटे	127
18	स्वास्थ्य एवं पातञ्जल योग	श्री. सत्यनारायण सिंह	137
19	शारीरिक शिक्षा में योग का महत्त्व	श्री. जीतेन्द्र कुमार गुप्ता	142

★★★

Globalization of Culture: Recent Trends in Literature

✍Prof. Sharat Chander Sharma

Today, globalization is in the air. Rather, like the air, it permeates everything – like the 'z' in the title of the subject of this seminar. The "globalization" in the title is not with "s" but its American cousin "z". I would like to hasten to add that I mention this not as a mistake, but a trend which has entered in our daily discourse unawares. We hardly realize this intrusion and its significance. These spellings have become norm of the day, without our having realized it. The organizers of the seminar may try to blame it on our dear friend, Mr. Computer, who like a stern but well-meaning friend, dutifully underlines with a red line whenever we type the word with our time honoured spelling as per the Queen's English. But as I clarified that this is no mistake – it is the global trend. It underscores many points – first, the fact that the mother tongue of computer is American English; secondly, the economic aspect of this tectonic shift of the power centre of the world from the British empire to the United States of America, and thirdly, its far-reaching consequences which may be good or bad, depending on which side of the fence we are sitting.

I will explain what I mean when I say 'depending on which side on we are sitting'.

Globalization – not new phenomenon for India

For us, in India, as my friends from the Sanskrit scholar's fraternity would bear me out, since times immemorial Globalization is not an unfamiliar concept. Our ancient works have eulogized it as an ideal, to be yearned for by every man with a large heart.

अयं निजः परोवैति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

Meaning 'this is mine, that is someone else's, this kind of calculations are made by men with narrow hearts; for the large-hearted ones, the whole world is a family.'

And truly India, especially ancient India, even modern India to some extent lived up to that ideal. One such example is the concept that 'deshatana' touring, is the best form education. Pilgrimage was regarded as the source of worldly knowledge as well as ultimate bliss and Moksha. Even today, Kumbhas, with millions gathering at the appointed day and place, are a source of wonder to the whole world. Kumbhas were the occasions when all the ascetics of all philosophical lineages met and discussed their views and achievements.

Global village – a great melting pot

When we look at these great traditions, one fails to understand the modern hullabaloo about the so-called "invasion of the western culture," and the resentment of English being spoken by the Indian multitudes. If the whole world is a family, should that family have one common language? And need that language be an Indian language only? We are filled with holy pride when we see foreigners speaking in Sanskrit or Hindi; shouldn't we feel the same kind of pride and joy when Indians speak English? If we are a family, all languages, all cultures, all skin colours should be dear to us. And if we differentiate between ours and theirs, then we are not being 'udarcharita' people. We should not wish for a world order where we would only seek to export our culture, language, our beliefs, our faith and resent to receive global inputs of the same nature in the same measure.

Modern Globalization – an economic phenomenon

Indian ideal of the world being a large family was mainly cultural. But, the term in its modern avatara is primarily describes an economic phenomena.

Actually, from the modern standpoint, globalization is looked upon as a recent phenomena in the economic field when the bi-polar world order crumbled with the disintegration of Soviet Union. Earlier the world was divided between the communist and non-communist countries, while India with its non-aligned philosophy, refused to follow the trend and tried to create her own brand socialism which was an attempt to strike a balance

between the capitalist and communist economies. Those were the days when the countries India included, followed protectionist policies and markets which were closed to 'foreign goods'. Imports of non-essential goods was restricted lest the wealth of the nation should fly away to crafty foreign countries. As a result, black market thrived and parallel economies emerged. But when the Soviet Union vanished from the world map and the fear of the red economic invasion receded, the world economies began to open up. Even the restrictive Chinese leadership realized the benefits of capitalist concept of free market and went on to become the biggest economy of the world. India also joined the band-wagon in the 1990s, and the results are there for all to see.

Effects on literature

Now how this reflects on literature? As the organizers of the Conference have not restricted the topic to any particular language or country, and kept the field wide open, we shall be able to have only a telescopic view of the contours of the impact of globalization on literature in general, without going into specifics. **The great fear of the Unknown – assertion of regional identities.** The fear of the unknown is greater than the fear of the familiar, and this is true of globalization too. As we don't know what kind of influences will enter when the floodgates of restrictions are opened, so arrival of globalization is feared as some sort of cataclysmic event which would destroy the old, familiar world order. That is why, literature in India and other commonwealth countries came to look upon it as a sort of neo-colonialism. Once bitten, twice shy – goes the adage, and India with its bitter experience of foreign subjugation, was more sensitive to this perceived threat. Clamour for protection and promotion of local languages and literature grew. They felt that under the onslaught of "foreign" influence, the regional identities needed to be protected. Regional identity was sought to be asserted even at the cost of national integration. Demands for inclusion of even minor dialects into the 8th schedule grew louder and shriller, a process in which the local leaders

found a shortcut to instant fame. So we see, an immense growth in the number of writers in local languages, who receive financial assistance from the government for their publication, as there are hardly any readers for them to support them. At times, one suspects there are more writers, than readers, in the local languages.

Recognition of regional varieties of English

As hinted at the beginning of this paper, the economic and technological leadership passed on from the British empire to the United States, the Queen's English did not remain sacrosanct for long. The American English not only came to be recognized but also became fashionable. The youth world over took pride in the pronunciation characterized with tongue-tapping. Even the BBC announcers and reporters were found succumbing to the temptation. Even Indian English pronunciation found its proponents.

Interest in regional writing in English writing grew and the American literature, Canadian literature, Australian literature, Indian English literature came to be recognized. As the promotions in academic career came to be dependent on research work, the field of English literature was soon exhausted by the careerist academicians and newer, virgin areas of research were avidly sought in places which had been off the literary maps of academic scouts. Such areas were soon found in Africa, the Caribbeans, etc. New terms like the Emerging literature, the Aboriginal Literature became current.

International recognition of local talent

But on the positive side, globalization has also meant more international recognition of local talent. Indian writers have been receiving astronomical amounts of money for their publications. Some of them have been paid huge amounts as advance for the novels which are yet to see the light of the day. Many international prizes for overseas writers make it easy for Indian writers to access that kind of international limelight.

International Protection to Voices of Dissent

Another important positive impact of globalization has been the protection received by the voices of dissent. Global communication technology has given a new platform to the dissenting voices in iron countries like China and North Korea where the authoritarian regimes are known to clamp down any dissenting voice with iron hand. Thanks to the computer and the internet, they can reach out to the world audiences instantly only with their views but also with cries for help in case of official crackdown.

The western ideal of freedom of expression, also enshrined in our Indian constitution, has permeated the literary world beyond the western horizons, and whenever the writers have come under threats due to the opinions expressed in their literary works, the west has done a marvelous job of providing them a foolproof protection. Salman Rushdie and Taslima Nasreen would not have possible, had there not been a global awareness for their work. So, the writer today is more fearless, more expressive of his opinion even these go against the popular opinion. He knows he can be a literary iconoclast with greater impunity today.

Premium on Offending

But this has its downside too, as this impunity not only makes it possible to offend the society without reprisals; it also proves to an easy shortcut to fame and money. Any scandalous writing becomes news, thereby getting promotion drive for free. One becomes an instant celebrity today when one targets the beliefs and traditions of the majority, in the name of progressive writing and hides behind his right to freedom of expression. These unscrupulous writers are often looked upon suspiciously as not agents of change, but agents of the enemies of the country.

Commercialization of writing

Another impact of globalization has been commercialization of writing. Today, a huge number of writers are not there under the impetus of some creative urge. They are not inspired by some muse, but are attracted by the lure of the lucre. So, the market is glutted by 'how to' books – the supposedly motivational books with such catch titles as How to Become a Millionaire, or How to Win Friends, although how many people have become richer or have gained friends by practicing the instructions given in those books has never been found out. But of course, the writers of these books go on to become best-sellers and make millions themselves.

But there are also exceptions, like the Godfather and the Vinci Code and more recently the Harry Potter series which became international best-sellers by their sheer merit.

Experimentation

Globalization has also made it possible for the writers to experiment. The Shiva trilogy and the Scion of Ikshvaku by Amish Tripathy examples in the case. They are 're-imagined' accounts of the lives of Shiva. In the trilogy, Shiva speaks an English familiar to most readers, full of everyday Indian street slang and Americanisms.

'Sexsellization'

Sex sells, so modern writing has a liberal dose of this too. Many Indian novels are quite candid in this regard when they describe the uninhibited life style of a section of the Indian youth. The modern Indian writing in English evinces a liberal and permissive approach to depiction sexual behavior. In an atmosphere surcharged with readily available internet porn, the taboos are crumbling by the wholesale, and the same is reflected in the literature. The theme of extramarital affairs is unabashedly presented as a legitimate tool of female revenge for male infidelity. (Chocolate – Manju Kapoor). One of the poems anthologized by the Department of English, University of Delhi, has been rendered unteachable due to candid

references to female genitalia (Some People –Rita Ann Higgins)

Due to globalization, the writing of 21st century became market-driven, rather than creative-urge driven. This is not to say that we don't have the स्वान्तः सुखाय literature any more. On the contrary, the 21st century strides in the field of science and technology gave new wings to the individual authors' talent to soar the literary skies with.

Global Technologies in aid of Writers

Globalization brought us in contact not only with global markets, but also with global technologies of the world like the computer, the internet, the mobile. Desktop publishing tools blurred the boundaries between writing and publishing. The writers could now type and publish their work on the internet with unprecedented ease. Blog-writing developed as a new genre with instant global reach, bringing creative satisfaction of reaching the world. Not only that, the writers could now come face to face with his readers through video conferencing and live streaming.

Expression of Angst

The 21st century writer is better placed to give expression to his angst. So, generally, his themes are characterized with cynical scorn, dissatisfaction with the present world where even the comfort of flight of fancy to the dream world too is denied, by the ever blazing light of the 24x7 routine of the modern existence. This is the place where even the militants and armed rebels can be given a favourable treatment in the name of freedom of expression. Literary outpourings from the Kashmiri Diaspora even the most liberal and moderate ones display this trait. Exodus of the Kashmiri Pandits from Kashmir is the one of the greatest tragedy of modern world which is conveniently overlooked in the jehadi inspired clamour for Azadi in Kashmir. When confronted with the hard fact of Kashmiri Pandits' displacement, the Separatist leadership response is: we will welcome their return to the valley, let them come and join our struggle for Azadi. The same kind

of argument is to found in the celebrated Kashmiri poet Aga Shahid Ali poem:

At certain point I lost track of you.
You needed me. You needed to perfect me:
In your absence you polished me into the Enemy.
Your history gets in the way of my memory.
I am everything you lost. Your perfect enemy.
Your memory gets into the way of my memory…
There nothing to forgive. You won't forgive me.
I hid my pain even from myself: I revealed my pain only to myself.
There is nothing to forgive. You won't forgive me.
If only somehow you could have been mine, what would not have been possible in the world?

As indicated in the form of this poem, free verse seems to the favourite mode of writing for the present day poet because of it gives greater freedom and flexibility to the poet.

Conversely, the government, the established authority is presented as the evil oppressor. The majority is looked upon as a brute force which must be dismantled in order to free the oppressed. The agonies of the poor are magnified feeding their anger against the supposed oppressor, and the rise of the downtrodden is celebrated and a just retribution for the misdeeds of their ancestors.

Such literature celebrates the rebellion against all the established order, denying, by implication, the existence of any goodness in the things belonging to the past. Hence, respect for the वयोवृद्ध and the ज्ञानवृद्ध is pastiche and not the in thing.

The tendency is to amplify the miseries of the poor and downtrodden to an unnatural pitch which makes the reader suspect whether he is dealing with some author with some hidden agenda. In Bama's "We Too are Human Beings" – describes the unsavoury experience of the child-narrator when she sees her old relative fetching eatables for his employer in a diffident manner. The minor incident and the reaction to it seem to be too far-fetched to be

convincing. There have far-more serious atrocities against the down-trodden than the one depicted in the story.

Similarly, the "Lost Spring" by Anees Jung sympathizes with a rag-picker child in child in Delhi, without going into the circumstances which drove him from his native Bangladesh, and the fact that his arrival and stay in India are illegal. This selective highlighting of facts raises questions about the author's integrity. To sum up, globalization, being an economic phenenon, has brought in an element of commercialization in literature. This has impacted literature in the following ways:-

1. Writing today is a writing with an eye for gaining money and fame.
2. This writing gloats in controversy, because controversy becomes news item, leading to free publicity.
3. Writers tend to shock the majority. This endears them to the progressive camp, there is a majority backlash and then they can claim impunity, invoking their right to expression.
4. There is a mushroom growth of writers thanks to the easy availability of technology.
5. In the literature of the developing nations, themes of social oppression are in the vogue. The oppressed is seen as rising up from the quagmire of despondency and trying to hit against the forces of oppression and exploitation.
6. The literature of the west goes for tales of ratiocination and intrigue (The Godfather, The Vinci Code), or takes a flight of fancy to the never, never land (The Harry Potter Series), or explores the milk of human kindness (The Enemy).

Future

1. On the basis of the trends evinced by literature under the influence of globalization, the nations of the world would be forced to come closer to each other and a mutually interdependent world would become a reality. This would unleash forces of amalgamation as well as forces of disintegration at

an unprecedented level. Civilizations of the world could clash against each other and the smaller or weaker ones would get cannibalized. Of course, this would be reflected in the literature of the times.

2. The non-serious, lucre-driven literature, coupled with easy availability of alternate media would further erode the readership base.
3. The erosion of readership would render writing a unprofitable activity, and the commercial writer would lose interest in it.
4. After this would emerge a class of truly inspired writers as well as dedicated readers.

Associate Professor
HOD Modern Subjects
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Shri Ranbir Campus, Jammu

★★★

भक्तिकाव्य का प्रदेय

✍डॉ. जयप्रकाश नारायण सिंह

आज के युगीन वातावरण की सबसे बडी विडम्बना यही है कि, पूरा का पूरा युगीन वातावरण ही विषाक्त हो गया है । निराला के शब्दों में कहे तो, 'इस विषम बेलि में विष ही फल' व 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' कामायनीकार प्रसाद जीन के शब्दों में कहे तो, 'सौन्दर्य जलधि स भर लाए केवल तुम अपना गरल पात्र' और गोस्वामी जी के शब्दों में कहे तो 'जानि गरल जे संग्रह करहीं । कहहु उमा ते कस नहिं मरहीं ।' एवं प्रमुख ललित निबंधकार स्व. कुबेरनाथ राय जी के शब्दों में कहें तो 'आज हम कुछ हताश-हताश जैसे है, गोया हम एक हारी हुई सना हो ।'' जैसी उक्तियाँ यत्र-तत्र सर्वत्र चरितार्थ हो रही है । फलत: समाज एवं राष्ट्र के जीवन में निराशा का वातावरण व्याप्त होना एवं उसके साम्राज्य का विस्तार पाना लाजमी एवं स्वाभाविक ही है । ऐसी विषम परिस्थितियों में स्वभावत: हमारी दृष्टि अतीत में जाती है आर अगर वह कहीं टिकती है और सम्बल पाती है तो उस स्वर्णिम अतीत पर जिसे हम हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल अथवा स्वर्णयुग होने का श्रेय देते हैं । सच तो यह है कि, वहीं से हमें प्रेरणा भी मिलती है, मार्ग भी मिलता है और मार्गदर्शन भी । अर्थात् 'पथ एवं पाथेय' दोनों ही प्राप्त होते हैं । ऐसे में स्व. रामविलास शर्मा जी के ये कथन बरबस याद याद आते है कि, 'इतिहास मनुष्य की तीसरी आँख है ।' ईश्वर ने मनुष्य को पीछे की ओर देखने वाला नेत्र दिया है और वह है - उसका इतिहास बोध । अन्यत्र भी 'इतिहास की जानकारी जनता को सही दिशा में बढने की प्रेरणा देती है । क्योकि आज का भारत कलन के

इतिहास की देन है । निश्चय ही हम उस स्वर्णिम अतीत से वर्तमान के नवनिर्माण हेतु बहुत कुछ प्रेरणा एवं सीख ले सकते है और इस प्रकार व्यक्ति, परिवार एवं समाज को संस्कारित कर 'राष्ट्र एवं विश्व मानवतावाद' के विकास एवं उन्नयन में अप्रतिम सहयोग दे सकते है ।

भक्तिकाव्य वास्तव में भारतीय काव्य की आत्मा एवं भारतीयता का प्राण है । इस काव्य में भक्तिपरक रचनाओं का प्राबल्य रहा, प्राधान्य रहा । सच तो यह है कि भक्ति आंदोलन कोई साहित्यिक अथवा भाषिक आंदोलन मात्र ही नहीं था, वरन् वह धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का एक अखिल भारतीय आंदोलन था । इस आंदोलन से सम्पूर्ण भारतीय समाज में एक नई चेतना, प्राणवत्ता एवं शक्ति का संचार हुआ । वस्तुतः निगुर्णः एवं सगुण धाराओं में प्रवाहित होनेवाला यह काव्य गुणवत्ता, परिमाण एवं प्रभाव सभी दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध एवं उपादेय है । वास्तव में हिन्दी भक्तिकाव्य, हिन्दी समाज या जाति की उदारतम चेतना का विस्तृत दस्तावेज है । कबीर, जायसी, सूर, तुलसी एवं मीरा, इस युग के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि हैं और यह मान्यता सर्व स्वीकृत है । इसका निहितार्थ यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-दलित, पुरुष-स्त्री, समाज के सभी वर्गों का यह साझा रचनाकर्म तो है ही साथ ही हिन्दी के जातीय जीवन की व्यापक समरसता का अन्यतम प्रमाण भी है - यह 'हिन्दी भक्ति-काव्य' । इतना ही नहीं इसमें नहिं मानुषात् श्रेष्ठतारं हि किञ्चित का स्पष्ट उद्घोष है । यह संयोग से कुछ अधिक ही है कि ये पाँचों कवि मिलकर समूचे हिन्दी प्रदेश के विविध जनपदों अथवा बोली क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं - पूर्व में भोजपुरी से लेकर अवधी, ब्रज से होते हुए पश्चिम में राजस्थानी तक । हिन्दी समाज की उदारता यहाँ इस सन्दर्भ में भी ध्यातव्य

है कि उसने रचनाकार के प्रसंग में किसी तरह का भेदभाव नहीं बरता और सभी को 'सर-माथे' पर बिठाया और तो और इस काल के काव्य में 'मनुष्य मात्र की एकता' और 'सर्वधर्म समभाव' का भाव पूरी तरह प्रतिष्ठित है । फलत: जनजीवन में जनजीवन में ऐसी उदारता का उदय हुआ कि 'प्रेम' ही सर्वोपरि हो गया और धार्मिक या जातीय संकीर्णता उसके नीचे दब गई । कबीर आदि की समन्वयात्मक सुधारवादी दृष्टि जायसी आदि सूफियों की उदारता से परिपोषित हो सूर-तुलसी-मीरा-रहीम रसखान तक आते-आते एक व्यापक जीवन दृष्टि में परिवर्तित हो गई और इस काल में जो कविता सृजित हुई वह मात्र हिन्दी साहित्य की नहीं वरन् विश्व साहित्य के इतिहास की अनुपम निधि है । इस काल की काव्यधारा के चार घाट या सोपान है - निर्गुण-संतकाव्य एवं सूफी काव्य तथा सगुण-राम भक्ति काव्य एवं कृष्णभक्ति काव्य ।

प्राय: सभी संत एवं भक्त कवियों ने जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद का विरोध करते हुए सामाजिक स्थिरता के सबसे बडे तत्त्व 'जाति और धर्म' को चुनौती दी । कोई भी संत अथवा भक्त कवि जातीय घृणा को प्रश्रय नहीं देता । हर भक्त कवि भेदभाव का विरोधी था । सच यह ह कि, उस जमाने में भक्ति न तो बाह्याडंबर थी और न स्वार्थप्रेरित भेदभाव के उस जमाने में भक्ति सबको जोडनेवाली आंतरिक विवेक थी । वह वस्तुत: बहुत दूर तक सामंतवाद से विद्रोह थी । हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि यदि 'बौद्धधर्म' ने अशोक पैदा किया तो भक्ति आंदोलन ने अकबर ।

स्व. डॉ. रामविलास शर्मा 'प्रेमभावना और मानवतावाद' को समूचे भक्तिकाव्य का सारतत्व मानते है । उन्होंने लिखा है, संत साहित्य में बहुत से भेद-उपभेद है । कोई सूफी है । कोई

वैष्णव, कोई निर्गुणवादी है । कोई शैव, लेकिन सभी में एक तत्व समान है - 'प्रेम' । जायसी-सूर-तुलसी-मीरा-कबीर इनसे प्रेमतत्व निकाल दीजिए तो भेद-उपभेद ही बचे रहेंगे । लेकिन उनका मूल स्वर नष्ट हो जाएगा । इसलिए संत और भक्त का भेद करना भ्रम है ।

भक्ति काव्य की इसी प्रासंगिकता का उद्घोष करते हुए उर्दु के महाकवि इकबाल ने भी लिखा है -

'शक्ति भी शांति भी, भक्तों के गीत में है ।
धरती के वासियों की मुक्ति पिरीत में है ॥'

अब आइए थोडा अलग-अलग से भी इन पर विचार कर ले ।

निर्गुण-संत एवम् सूफी काव्य
संत-साहित्य या संतकाव्य

संत साहित्य के सन्दर्भ में स्व. डॉ. रामविलास शर्मा बडे ही निर्णयात्मक लहजे में उद्घोष किया है 'संत साहित्य हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलानेवाला, उनकी धार्मिक कट्टरता की आलोचना करने वाला, जाति-प्रथा और ऊँच-नीच का भेद मिटाने वाला साहित्य है । कबीर शब्दों मे हम इसे यूं कह सकते है -

साधो एक रूप सब माही ।
अपने मनहि विचारि के देखौ और दूसरों नाहीं ।
एकै त्वचा रूधिर पुनि एकै, विप्र सूद्र के माही ।
कहीं नारि, कहीं नर हवै बोलै, गैब पुरुष वह नाहीं।

निश्चय ही संत साहित्य की एक अत्यंत प्रमुख विशेषता रही है । आत्मालोचन अथवा आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति अर्थात् स्वयं भीतर झांक कर स्वयं के दोषों की पहचान कर उनका परिष्कार करना । यथा कबीर के ही शब्दों में -

बुरा जो देखन मै चला, बुरा न मिलिया कोय ।

जो दिल ढूढू आपना, मुझसा बुरा न होय ।

और तो और इस सन्दर्भ में वे निंदक तक को अपना हितैषी मानने पर बल देते ह । तभी तो कबीर बेधडक कहते है–

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय ।
बिनु पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय ॥

पर परनिंदा की दुष्प्रवृत्ति से भी बचने की चेतावनी देन से वे चूकते नहीं है ।

संत जन की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह रही है कि वे 'कागद लेखी' की अपेक्षा 'आँखिन देखी' अर्थात शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा अनुभवजन्य ज्ञान को आचरण की कसौटी मानने के पक्षधर हैं । वे 'कनक और कामिनी' से दूर रहने की सलाह देते हुए बादशाहत की नई परिभाषा गढते है । उनके अनुसार

चाह गयी चिन्ता गयी मनुआ बेपरवाह ।
जिनको कछु न चाहिए, तेई शाहंशाह ॥

प्राय: लोग ऐसा कहते ही रहते है कि, हने को हनिए दोष पाप न गनिये पर संत जन ऐसा करने से बरजते हैं और यहाँ तक कहते है कि,

जो तोंको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तो को फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥

इतना ही संत कवि ईश्वर की सत्ता और शक्तिमत्ता में अटूट आस्था एवं विश्वास रखने के कारण अत्यंत निर्भीक, स्पष्टवादी और सत्यवादी थे किसी भी धर्म की मिथ्या धारणाओं के खंडन में इनके मन में भय का संचार न होता था कारण कि उनका दृढ मत था –

जाको राखे साइयाँ, मारि न सक्कै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥

कहना न होगा कि वर्तमान जीवन में समस्त मर्यादाओं के अतिक्रमण का मूल कारण शील की उपेक्षा है । संतों का ऐसा मानना है कि शील ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति या निधि है –

सीलवंत सबसे बडा सबै रतन की खानि ।
तीनि लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥

आत्मवत् शीलवान बना देना संतों का मूल वैशिष्ट्य है ।

पारस में अरू संत में खरो अंतरों जान ।
वे लोहा सोना करें, वे कर द आप समान ॥

निश्चय ही संत कवियों के पास धर्म, दर्शन, भक्ति और चरितत्रनिर्माण के लिए अपना निजी संदेश था । धर्म के क्षेत्र में वे संकीर्णता के विरोधी थे । दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत दृष्टि से एकेश्वरवाद के समर्थक थे । भक्ति के क्षेत्र में वे कर्मकाण्ड रहित निष्ठा और चरित्र विकास के लिए आचरित सत्य को जीवन की कसौटी मानते थे ।

सूफी काव्य

अब जहाँ तक सूफियों के काव्य का प्रश्न है । निश्चय ही सूफियों ने संतों के कार्य को आगे बढाने में सहयोग दिया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था । प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई ।' निश्चय ही सूफियों का संदेश ईश्वर प्रेम के साथ-साथ मानवीय प्रेम से परिपूर्ण है । उनकी उदारता की झलक जायसी के इन विभिन्न कथनों में देखी जा सकती है । यथा 'विधना के मारग है तेते । सरग-नखत तन रोवां जेते ।' अन्यत्र भी –

तीनि लोक, चौदह खंड, सबै परै मोहि सूझि ।
प्रेम छाडि किछु और न लोना जौ देखा मन बूझि ॥

और तो और जीवन सत्य का बेबाक चित्रण करते हुए जायसी स्मरण दिलाते हुए कह उठते है –

मानुस प्रेम भयड बैकुंठी । नाहिं त काह छार एक मूठी ।

स्पष्ट है कि भक्तिकाल को प्रासंगिक एवम् स्वर्ण युग बनाने में सूफियों का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा ।

सगुण भक्ति काव्य : राम काव्य एवं कृष्ण काव्य

भक्ति काल का श्रेष्ठ काव्य सगुण भक्ति काव्य ही है । सगुण भक्ति काव्य ने मध्ययुगीन हिन्दू जनता में जिस रूप में ईश्वर विश्वास पैदा किया वह अद्‌भुत और अभूतपूर्व था । हिन्दू जाति नैराश्य की मनोदशा में जीवित थी ।' उसके लिए काव्य रूपी संजीवनी का प्रयोग इन भक्त कवियों द्वारा किया गया और वह चमत्कारो सिद्‌ध हुआ । अवसाद, कुण्ठा, निराशा और दैन्य की भावना से मुक्त होकर हिन्दू जाति ईश्वर के सगुण अवतारी रूप में आश्रय पा सकी, यह भक्तिकाव्य की सबसे बड़ी देन कही जाएगी ।

रामकाव्य

रामकथा नरत्व में नारायणत्व के समग्र अवतरण की रसगाथा है । गोस्वामी जी ने हिन्दू धम का सच्चा स्वरूप राम के चरित्र में अन्तर्निहित कर दिया । रामचरित मानस मध्यकाल का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है । वह देशकाल की सीमा को पार कर समस्त संसार के सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ हुआ है । भारतवर्ष की साधना का जो सर्वोत्तम है, जो कुछ महान है, जो कुछ सरस और जो कुछ भव्य है वह इस बहाने अभिव्यक्ति पाने को विकल हो उठा । इसी उदात्त अभिव्यक्ति में ही रामचरित मानस की महिमा है । निश्चय ही रामचरितमानस लोकमर्यादा की स्थापना का सर्वोत्तम काव्य है । इससे उत्तम ग्रन्थ न तो इसके पहले लिखा गया और न तो इसके बाद ही लिख गया यह आज भी

यथावत् प्रासंगिक बना हुआ है । इस काव्य की लोकमांगलिक सामाजिक चेतना, राजनीतिक समझ, राष्ट्रिय भावना, दार्शनिक मतवाद आज भी हमारा मार्गदर्शन करने में सक्षम है । तुलसी की विश्वबंधुत्व की भावना का कहना ही क्या? उनका काव्य योगी, यती, संन्यासी, गृहस्थ, राजनेता, समाजसेवक, भक्त, साधक सबके लिए उपयोगी है । 'सीय राम मय सब जग जानी' कहकर उन्होंने अनोखे समाजवाद की रचना की । उन्होंने अपने ढंग से समन्वय पर बल देकर समाज को विशृंखल होने से बचा लिया । शैव-वैष्णव-शाक्त आदि सम्प्रदायों के आभ्यंतर वैमनस्य को दूर करने का जैसा स्वस्थ और संयत प्रसास गोस्वामी जी ने अपने काव्य के माध्यम से किया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । कहना न होगा कि तुलसी और कबीर दोनों ने ही क्रमशः 'संत हंस गुन गहहि पय परिहरि' बारि बिकार और 'सार-सार को गहि रहै थोथा देय उडाय' की सूक्तिद्वारा जीवन में सार ग्रहिणी प्रवृत्ति को अमल में लाए जाने पर जो बल दिया है वह उनकी अप्रतिम सूझ-बूझ एवं प्रतिभा का परिचायक है ।

निश्चय ही आज भी हमारे समाज में ऐसे लोगों की कम भी नहीं है जो प्रगतीशील होने के नाम पर तुलसी को नारी एवं शूद्र विरोधी सिद्ध करने की जी तोड कोशिर कर रहे हैं । पर वे यह भूल जाते है कि, सीता जैसा आदर्श स्त्री चरित्र अगर किसी ने समाज को दिया तो वह अकेले एकमात्र तुलसी ही ने, किसी और ने नहीं । और तो और 'कत विधि सृजी नारि जगमाही । पराधीन सुख सपनेहु नाहीं । कहकर न केवल नारी जाति के दुःख के सबसे बड़े और मूल कारण पर उंगली रखी वरन् उसे रेखांकित कर उस दिशा में सोचने व तदनुरूप समाधान प्राप्त करने हेतु उत्प्रेरित किया । अब जहाँ तक शूद्र विरोधी होने की बात है मेरी अपनी जानकारी में अन्य कोई भी ऐसा अवतारी पुरुष नहीं हुआ

जिसने शबरी जैसी अछूत के हाथों और तो और जूठे बेर तक खाने की बात चरितार्थ की हो । जाति-पाँति को लेकर तुलसी भी कम उपेक्षित नहीं हुए थे, तभी तो कवितावली में उनकी खीझ इन शब्दों में प्रकट हुई है -

'धूत कहो, अवधूत कहो, रजपूत कहो,
जोलहा कहो काऊ ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥

हर देश काल के लोगों में सामाजिक समरसता हेतु अच्छे नागरिक और सद्गृहस्थ की जरूरत रहीं है और रहेगी भी । निश्चय ही पारिवारिक दृष्टि से 'रामचरितमानस' भारत तो क्या विश्व के श्रेष्ठतम ग्रन्थों में से एक है । प्रेम एवं त्याग भावना का जैसा सम्मिश्रण हमें 'रामचरितमानस' के पात्रों में देखने को मिलता है । वैसा अन्यत्र दुर्लभ है और तो और वन भेजने वाली कैकेयी माँ के प्रति भी राम का प्रेम कौशल्या से किसी प्रकार भी कमतर नहीं । राम और भरत का त्याग तो सचमुच अप्रतिम ही है, जिसने न केवल दूसरा महाभारत होने से बचा लिया वरन् उनके चरित्रों को अप्रतिम ऊँचाईयाँ दी । तभी तो गोस्वामी जी को कहना पडा-

भरत सरिस को राम सनेही ।
जग जपु राम, राम जपु जेही ।
और तो और
भरत अमित महिमा सुनु रानी ।
जानहि राम न सकहिं बखानी ॥

परिवार में मुखिया की भूमिका को रेखांकित करते हुए गोस्वामी जी लिखते है -

मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक ।
पालइ-पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेके ॥

आइए अब थोडी मर्यादा का मर्यादित जीवन का जिक्र भी कर ही लिया जाए कारण कि, यदि श्री राम, मर्यादा पुरुषोत्तम है, तो 'रामचरितमानस' के अन्य पात्रों का जीवन भी कम मर्यादित नहीं है । राम-सीता विवाह के प्रसंग की एक मार्मिक झाँकी जो अत्यंत ही दर्शनीय एवं मनोहारी बन पडी है - देखिए -

दूलह श्री रघुनाथ बने,
दुलही सिय सुन्दरि मन्दिर माही ।
गावति गीति सबै मिलि सुन्दरि,
विप्र जुवा जुरि वेद पढ़ाहीं ।
राम को रूप निहारति जानकी,
कंगन के नग की परछाहीं ।
या ते सबै सुधि भूलि गई,
कर टेकि रही पलुटारति नाही ॥

मध्यकाल में 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयों' कहकर तुलसीदास का स्वागत लोगों ने भक्त रूप में किया । पर 'रामचरित मानस' का गुटका यदि उत्तर भारत में घर-घर और समूचे भारत और भारत के बाहर भी पढी और समझी जाती वही है तो उसका आधार मात्र धार्मिकताया भक्ति भावना ही नहीं रही वरन् व्यक्ति, परिवार, समाज, मर्यादा, राजनीति, संस्कृति दर्शन आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी और भारतीय साहित्य तो क्या विश्व साहित्य में भी कोई ऐसा उपादेय ग्रन्थ न होगा । तुलसी के समकालीन रहीम तक को अस ग्रन्थ की लोकप्रियता देख मुक्त कण्ठ से यह कहना पडा -

रामचरित मानस विमल, हिन्दुआन को प्रान ।
हिन्दुआन को वेद सम, जमनहिं प्रगट कुरान ॥

मुझे अज्ञेय जी की ये पंक्तियाँ बरबस याद आ रही है । 'जिन मूल्यों के लिए जान दी जा सकती है, उन्हीं के लिए जीना,

सार्थक जीना है । मानवीय सृष्टि के लिए जिया हुआ जीवन ही मानव जीवन है ।' निश्चय ही मानस की ये पंक्तियाँ 'रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाइ पर वचन न जाई ।' अथवा 'जौ रन हमैं-प्रचारै कोई । लरहि सुखेन काल किन होई ।।' एवं 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाय पन कीन्ह' और इन जैस बहुतेरी पंक्तियाँ वचन पालन और कर्तव्यपालन की दृष्टि से अप्रतिम तो है ही इनका मूल्य भी प्राणोपरि है । गोस्वामी जी ने यों हो यह दावा नहीं किया है।

रामकथा सुन्दर करतारी । संशय विहग उडावन हारी ।

अथवा

रामकथा जे सुनत अघाही । रस विशेष जाना तिन नाहीं ।

इन पंक्तियों के समर्थन में मैं अपनी बात नहीं, प्रख्यात ललित निबंधकार स्व कुबेरनाथ राय जी की बात उद्धृत करना चाहता हूँ, जिनके अनुसार हम चाहे Democrecy में विश्वास करें या Totalitarian पद्धति में, चाहे Socialist State में जिए या Communism में हर हालत में हमें ईमानदार नागरिक चाहिए, ईमानदार सेवक चाहिए, आदर्श भाई-पिता-माता- पुरजन परिजन चाहिए । राजनीतिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था बदलने से ये आवश्यकताएँ बदल नहीं जाती । अतः ये सब चाहिए ही । इस दृष्टि से भी हम सोचे तो लगता है, हमारी नाव डुबने से बच सकती है यदि रामचन्द्र हमारे आदर्श हो, यदि राम का आदर्श ही हमारा आदर्श हो । गोस्वामी जी की काव्यकला के सन्दर्भ में हरिऔघ जी के 'शब्दों मं कहें तो कह सकते हैं - कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसी की कला ।'

कृष्ण काव्य

अब जहाँ तक कृष्ण भक्ति काव्य का संबंध है । इस युग में कृष्ण भक्ति कवियों की विशाल परम्परा हिन्दी साहित्य में

अवतीर्ण हुई । अष्ट छाप के कवियों में सूरदास, नंददास और परमानंद दास ने अपनी अद्‌भूत प्रतिभा द्वारा जो काव्य सर्जना की वह अप्रतिम एवं बेजोड़ है । अष्टछाप के कवियों ने मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति परिष्कृत करने के लिए जो अद्‌भुत भावसंपदा प्रस्तुत की वह अनेकानेक दृष्टियों से अत्यंत ही समृद्ध एवं मनोहारी है । सूरदास की भक्ति का आधार पुष्टि या भगवत् कृपा है । इसी कृपा के सहारे मनुष्य अपने दु:ख-दैन्य से मुक्ति पा सकता है । अनुग्रह और प्रभु भक्ति का यह मार्ग मानव का सबसे बडा संबल है । इस संबल को खोज निकालने का श्रेय इन्हीं कृष्ण भक्त कवियों को है । वात्सल्य और शृङ्‌गार के क्षेत्र में जितना और जैसा उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । निश्चय ही इन दोनों ही क्षेत्रों में सूर अपना शानी नहीं रखते और तो और इन दोनों ही क्षेत्रों में तुलसी तक को मातकर सूर-सूर तुलसी ससि की उक्ति चरितार्थ करते हैं ।

नारी स्वातंत्र्य और प्रेम की उन्मुक्तता समूचे सूर काव्य में दर्शनीय बन पडी है । वात्सल्य का चरमोत्कर्ष, शृङ्‌गार का रस राजत्व सख्य की समता, मातृत्व की ममता तथासगुणात्मकता सूरकाव्य में इस कदर हाबी है कि, उसने तत्कालीन मानव जीवन एवं जगत को इस कदर प्रभावित किया कि न जाने कितनी ताज बेगमें, रहीम रसखान जैसे भावुक, कृष्णलीला पर कुर्बान एवं न्योछावर हो गए । रसखान ने तो अनंत अलौकिक रस के आगार श्रीकृष्ण के लीलीगान के रसास्वादन में ही स्वयं को कृतकृत्य समझा । त्यां रसखानि, वही रसखानी, जुहै रसखानि, सु है रसखानि और इस प्रकार अपने को अजर-अमर कर दिया । 'मानुष हौं तो वही रसखानी' वाला पद भी इसी भाव सत्य को उद्‌घाटित करता है ।

प्रपत्र के आकार एवं समय को ध्यान में रखते हुए सूरकाव्य के विषय में यही कहा जा सकता है कि सूरकाव्य का विषय परिमित है, पर इस परिमित विषय पर भी सहस्रो अनमोल पद बना लेना हँसी-खेल नहीं है । सच यह है कि काव्योचित नवीन प्रसंगो की उद्‌भावना करने में सूर अपना शानी नहीं रखते । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सूर की इस प्रतिभा की मुक्तकण्ठ से सराहना करते हुए कहा है, 'प्रसंगोद्‌भावना में ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में भी नहीं पाते ।'

सूर की काव्य प्रतिभा के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे अत्यंत प्रसिद्ध है -

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी ।
बची-खुची कबिरा कही और कही सब झूठी ॥

एवम्

सूर-सूर तुलसी ससी, डडुगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तह करत प्रकास ॥

वास्तव में सूर काव्य आत्मा का काव्य है । वह अंतर के तार को झंकृत करने वाला है, जिसके झंकृत होते ही बुद्धि निर्मल, मन विकसित, प्राण पुलकित और शरीर उल्लसित हो उठता है । भाव साम्राज्य के अद्‌भूत सम्राट सूर की टक्कर का हिन्दी साहित्य में केवल आर केवल एक ही कवि है और वह है- कवि कुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास । काव्यशिल्प की दृष्टि से भक्तिकाव्य निश्चय ही अत्यंत समृद्ध है । काव्य और संगीत का समन्वित सम्मिश्रण यदि कहीं अत्यंत भव्यतम एवं आकर्षक रूप में हुआ है तो भक्तिकालीन काव्य में ही लय-स्वर-ताल-यति-गति आदि की साधना के साथ पद शैली में इन कवियों ने जो काव्य रचा वह परवर्ती युग के कवियों के लिए भी अनुकरणीय बन गया । रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार,

गुण, वृत्ति आदि का प्रयोग इन कवियों ने जिस सहजता के साथ किया है, वैसी सहजता के साथ रीतिकालीन कवि भी नहीं कर सके ।

निष्कर्ष रूप में हम डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में कह सकते है - 'गुण और परिमाण, दोनों की दृष्टि से कथ्य तथा कथन को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान कर आनंद और कल्याण निःश्रेयस और अभ्युदय के समन्वय द्वारा इस युग के कवियों ने जो कीर्तिमान स्थापित किये वे परवर्ती युग में प्रायः दुर्लभ ही रहे ।'

निश्चय ही समूचा का समूचा निर्गुण एवं सगुण भक्तिकाव्य मूलतः प्रेम तत्त्व पर आधारित सच्चे अर्थो में मानव मात्र की एकता समता एवं मानववाद की वकालत करनेवाला स्वभावतः समन्वयवादी विशेषतः नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित की वकालत करनेवाला एवं व्यापक अर्थो में विश्वबंधुत्व को प्रोत्साहन करनेवाला संतोष, सुख एवं शांति प्रदाता अनुपम साहित्य है ।

प्राध्यापक
आर्. जे. महाविद्यालय
घाटकोपर (पश्चिम),
मुम्बई - ४०० ०८६ ।

★★★

कृष्ण भक्ति काव्य में भाषा सौन्दर्य

✍डॉ. मिथिलेश शर्मा

शब्द भावों को अभिव्यक्त करने का मूल माध्यम है । जिस कलाकार (कवि) का शब्द-कोश जितना समृद्ध होगा उसकी भाषा भी उतनी ही समृद्ध होगी । जिस प्रकार एक बढ़ई लकडी को तराशकर उसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है, उसी प्रकार एक कवि अपनी भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाने के लिए शब्दों से वह ऐसी क्रीड़ा करता है कि शब्दों का बाह्य रूप चाहे वही रहे, पर उसमें नये व्यंजक अर्थ का समावेश सहज ही हो जाता है । अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कवि शब्द और अर्थ का सहविन्यास करता है । उसकी भाषा मं शब्द और अर्थ एक दूसरे पर भारी नहीं, बल्कि एक होकर एक दूसरे को सौन्दर्य प्रदान करते हैं ।

'अपभ्रंश काल में हम राजनैतिक दृष्टि से कई खण्डों में विभक्त थे, पर संस्कृति के दृष्टि से पूर्व की भाँति एक बने हुए थे और उस संस्कृति की वाहिका मध्यदेश की ही भाषा थी । ब्रजभाषा अपने रूप में ब्रज से बाहर भी व्याप्त थी । राजस्थान की मीरा, गुजरात के नरसी मेहता, महाराष्ट्र के नामदेव तथा बंगाल की 'ब्रजवुलि' में रचना करनेवाला सभी ब्रजभाषा से परिचित और उसमें काव्य का निर्माण करनेवाले हुए है । प्रान्तीयता का मोह आज भले ही प्रबल हो, पर वह उन दिनों नहीं था ।[1]' अत: यह सर्व विदित है कि उस समय में ब्रजभाषा मुख्यभाषा के रूप में अन्य प्रदेशों की शब्दावली को समेटत हुए आगे बढ रही थी।

वैष्णवभक्ति के उदयकाल में विविध लीलाकारी महामानव कृष्ण के प्रति अनेक भक्त कवियों ने अपनी अनुभूतियों को व्यंजित किया, इतिहास इसका साक्षी है । प्रायः ऐसा कहा जाता है कि, ये सभी कवि मूलतः भक्त थे और अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचनाएँ किया करते थे, परन्तु ऐसा नहीं है । कृष्णभक्त कवियों की कला चेतना सामान्य से कहीं अधिक समृद्ध थी ।

ब्रजभाषा के विकास तथा रूप निर्माण में कृष्णभक्त कवियों का योगदान सराहनीय है । ब्रजभाषा को गरिमा प्रदान करने के लिए इन कवियों ने संस्कृत कवियों ने संस्कृत शब्दों, भाषा में निखार लाने के लिए तद्भव शब्दों व भाषा की व्यापकता के लिए विदेशी शब्दों को अपनी ध्वनियों में ढालकर भाषा को पूर्ण समृद्धता प्रदान की ।

1. **ब्रज के प्रचलित शब्द**

कृष्णभक्ति परंपरा के प्रायः सभी कवियों ने लक्ष्यार्थ और ध्वन्यार्थ से युक्त अनुकरणात्मक शब्दों के सहारे अनेक ऐसे प्रसंगों के सबल चित्र प्रस्तुत किए हैं, जिसमें भाषा की व्यंजक शक्ति में चार चाँद लग गए हैं । छन्दों में भाषा सीमाबद्ध हो जाती है पर तुकबन्दी करने के लिए प्राचीन आचार्यों ने 'अपिभाषम् भषम् कुर्यात्' कहकर शब्दों के जोड-तोड की छूट दे रक्खी है । कृष्ण भक्ति कवियों ने इस बात का खूब लाभ उठाया है । उन्होंने पंगु का पंग, नवनीत को लवनी, केतु को केत, गो को गइया, माँ को मइया, वर्षा को बारीस, गमन को गेल, देवकी को दैवे आदि शब्द के साथ खूब खेला है । भाषा की द्रुतगति का एक सुन्दरतम् उदाहरण दृष्टव्य है -

भहरात झहरात दावानल आयौ ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर वन,

धरनि आकास चहुँ पास छायौ ।
बरत बन वांस, थहरात, कुह कांस,
जरि उडत है भांस अति प्रबल धायौ ।[2]

2. मुहावरे और लोकोक्तियाँ

किसी भी भाषा को सजीव बनाये रखने के लिए उसमें मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग अनिवार्य समझा गया है । एक ओर जहाँ भाषा की प्रवाहपूर्णता के लिए सहजता उसका स्वाभाविक गुण है वही दूसरी ओर वक्रता व भावों की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति भी आवश्यक है । सदियों से चली आ रही ये उक्तियाँ आज भी पूर्णत: जीवित हैं ।

कृष्णभक्त कवियों ने मुहावरों का प्रयोग खूब उदारता से किया है । जिन स्थलों पर वक्र अभिव्यक्ति अनिवार्य थी, वहाँ इन कवियों ने मुहावरों का भी प्रयोग किया है । जैसे- कुछ प्रसंग - दान लीला, मान लीला विशेषकर भ्रमरगीत जहाँ गोपियों ने तीखे वाण रूपी वचनों की बौछार की है, वहाँ इनका प्रयोग दर्शनीय है । सूक्तियों का प्रयोग प्राय: सूरदास, नन्ददास तथा परमानन्ददास के काव्य में ही दिखाई देता है । वास्तव में मुहावरे और उक्तियाँ का प्रयोग इन कवियों ने मीठे शब्द के रूप में निर्गुण पर सगुण भक्ति की विजय के रूप में दर्शाया है ।

उदाहरणार्थ

कुम्भन दास की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग - ऐंडे ऐंडे जात हो, कहा इतरात हो, जाके बल पर आइ हो तापे जाउ पुकार, आँखिनि को तारो, न कान परी, न पावत पार, आदि ।[3]

सूरदास की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग

निपट दई को खोयो, मेहमानी कछु खाते, धूम के हाथी, फिरति धतूरा खाये, बरसति आँखि, गूंग गुर की दसा, मोल लियो बिन मोल, काहे को द्वै नाव चढावत आदि ।[4]

परमानन्ददास की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग

अँखियों सिरानी, उर आनन्द न समाई, घर बैठे निधि पाई, सब ब्रज गाजि हि लायो, अँखियन तारों, कुल दीपक, आँख दिखावे, ठगोरी लाई, रार बढ़ाई आदि ।[5]

कृष्णदास की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग

लोकलाज सब पटकी, तन मन फूली, अंग न समावत, हिये समाये फूलि जनावति चित्र लिखी सी पांति, रोम-रोम फूलि जाय, ठगौरी लाई इत्यादि ।[6]

नन्ददास की रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग

ज्ञान की आँखिन देखो, प्रेम ठगौरी लाई,
फाटि हिय दृग चल्यो,
पुजवै आस, मांगो गोद पसारि,
रही सिरनाइ, मनो मोल लई री,
तेरे बाबा की हैं चेरी भई री,
लाख बात की एक कही री आदि ।[7]

इन कवियों के अतिरिक्त चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, ध्रुवदास आदि की रचनाओं में भी मुहावरों का सुन्दर प्रयोग लक्षित है । प्रायः इन भक्तकवियों के मुहावरों में एकरूपता है । अधिकांशतः इन मुहावरों का प्रयोग नारी हृदय की सहज अभिव्यक्ति के लिए किया गया है । लोकोक्तियों का प्रयोग मुहावरों की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। सूरदास, नन्ददास और परमानन्ददास की रचनाओं में भी कुछ लोकोक्तियों का प्रयोग दर्शनीय है ।

सूरदास

एक पंथ द्वै काज, जहाँ व्याह तहँ गीत, अपनी दूध छांडि को पीवै खारी कूप को वारि, काटहु अंब बबूर लगावहु चंदन को

करि बारि, प्रेम कथा जाई पै जाने जापै बीती होय, सूरदास जे मन के खोटे अवसर परै जाहि पहिचानै आदि ।[8]

परमानन्ददास

सेंतिमेंति क्यों पाइये पाके मीठे आम ।[9]
फाट्यो दूध भयो जब कांजी कहा सबादहि होई ।[10]
परदेसी की प्रीत सखीरी अनत नहीं ठहराय ।
खायो पियो डगर उठि लाग्यो वाको कहा पिराय ।[11]

सूक्तियाँ

लरिका कहै बहुत सुत जाये जो न होय उपकारी,
एक सौ लाख बराबर गिनिये करै जो कुल रखवारी।[12]
परमानंद प्रभु पीर प्रेम की काहू सों नहिं कहिये ।
जैसे व्यथा मूक बालक की अपने तन मन सहिये ।।[13]

नन्ददास

पारस परसें लोह तुरत कंचन ह्वै जाई ।[14]
कथनी नाहिंन पाइये, पइये करनी सोय,
बातन दीपग नां बरै, बारे दीपग होय ।[15]

सूरदास से लेकर रत्नाकर तक सभी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा लोकोक्तियाँ व मुहावरों का प्रयोग प्रायः स्त्री पात्रों द्वारा ही किया गया है । नारी-हृदय की विवशता, उपालम्भ और व्यंग्य दर्शाने में इनका भरपूर उपयोग किया गया है । 'भ्रमरगीत' इसका प्रमुख उदाहरण है ।

सन्दर्भ

1. सूरदास का काव्य वैभव, डॉ. मुन्शीराम शर्मा, पृ. 27 ।
2. सूर संचयन, डॉ. मुन्शीराम शर्मा, पृ. 48 ।
3. ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प - सावित्री सिन्हा, पृ. 105 ।

4. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना शिल्प, सावित्री सिन्हा, पृ. 106 ।
5. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प सावित्री सिन्हा, पृ. 106 ।
6. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प-सावित्री सिन्हा, पृ. 107 ।
7. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना-शिल्प-सावित्री सिन्हा पृ. 107 ।
8. सूरसागर ना. प्र. सभा पद 3558-4369 ।
9. परमानंद सागर, डॉ. गोवर्धन लाल पद 1018 ।
10. परमानंद सागर, डॉ. गोवर्धन लाल पद 1027 ।
11. परमानंद सागर, डॉ. गोवर्धन लाल पद 881 ।
12. परमानंद सागर, डॉ. गोवर्धन लाल पद 271 ।
13. परमानंद सागर, डॉ. गोवर्धन लाल पद 446 ।
14. नंददास गन्थावली सम्पा. श्री ब्रजरत्नदास 'भ्रमरगीत' पद 68 ।
15. नंददास गन्थावली सम्पा. श्री ब्रजरत्नदास 'भ्रमरगीत' पद 535 ।

आर्. जे. कॉलेज
घाटकोपर
मुम्बई - ८६ ।

★★★

गोस्वामी तुलसीदास की प्रासंगिकता

✍ डॉ. (श्रीमती) गीता दुबे

हिन्दी साहित्य के महान भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् 1554 ई. में राजापुर वर्तमान चित्रकूट (बांदा) उत्तर प्रदेश में हुआ था । गोस्वामी शब्द में इतनी शक्ति है कि, गोस्वामी कहते ही तुलसीदास का स्मरण हो जाता है । तुलसी कृत 'रामचरितमानस' महाकाव्य सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य है और युगों तक यह ग्रन्थ भारतीय जनमानस का पथ प्रदर्शन करता रहेगा । जब तक मानव जीवन में रूढिवाद बना रहेगा तब तक तुलसीदास एवं उनका ग्रन्थ प्रासंगिक रहेगा । प्रासंगिकता से तात्पर्य है कि - प्रासंगिक होन की अवस्था, उपयुक्तता, अनुकूलता, सार्थकता । गोस्वामी जी सच्चे इतिहासकार, कुशल राजनीतिज्ञ और विचारों के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषक थे । जिस समय उनका प्राकट्य हुआ, भारतीय जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो चुका था । भारत में एक विदेशी सत्ता मुगल साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी । धन ऐश्वर्य एवं मुगल शासक भोगविलास में लिप्त रहते थे । दूसरी ओर भारतीय दर्शन मृतप्राय हो चुका था। तत्कालीन भारतीय जनता एवं समाज का वर्णन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - 'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया । उसके सामने ही उसके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे । ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे । आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़नेवाले

स्वतन्त्र राज्य भी नहीं रह गए । इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही । अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ।'

राजनीतिक परिस्थिति की तरह हो धार्मिक स्थिति भी थी। आदिकाल में ही पता चल जाता है कि, वज्रयानी सिद्ध कापालिक आदि देश के पूर्वी भागों में और नाथपंथी योगी देश के पश्चिमी भागों में रम रहे थे । 'सामान्य जनता की धर्म भावना कितनी दबती जा रही थी, उसका हृदय धर्म से कितनी दूर हटता चला जा रहा था ।' निर्गुणां पासक निराकार सर्वव्यापक ईश्वर-प्रचार में निमग्न थे, तो वैष्णव कर्मकाण्ड और आडम्बर का राग आलाप रहे थे । ऐसी संवेदनशील एवं विकट परिस्थिति में तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना करके भारतीय समाज, धर्म और राष्ट्र में एक नई क्रान्ति की सृष्टि कर दी । अधुनातन संदर्भ में देखें तो हमारा धर्म, हमारा अध्यात्म, हमारी आस्था कहीं टिक पाएगी । बाजारवाद एवं भौतिकवाद ने हमारी आस्था को हिलाकर रख दिया है । ऐसे समय में साहित्य ही हमारा सहारा बना है और हमारे सामने तुलसी साहित्य ही अग्रिम पंक्ति में खड़ा हुआ दिखाई देता है । समाज एवं राष्ट्र में जब तक दुर्व्यवस्था रहेगी तुलसी तब तक प्रासंगिक बने रहेंगे ।

तुलसीदास ने कुल बड़े-छोटे 12 काव्यों की रचना की है जिसमें 'रामचरित मानस' साहित्यिक अवधी में लिखा उच्चकोटि का महाकाव्य है । यह मानव जीवन का विज्ञान है। इस ग्रन्थ में 'स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा' की घोषणा करने वाले तुलसीदास 'सर्वजन हिताय' से प्रेरित होकर इस महाकाव्य की रचना की है । स्वांतः सुखाय कहने के पीछे तत्कालीन राजाश्रय से मुक्ति की

घोषणा है, जो राजाओं की झ्ठी प्रशंसा में उस समय चाटुकार कवि कर रहे थे । रामचरित मानस न तुलसी की दिमागी उपज है न दो, चार दिन में लिखकर तैयार ही किया गया है । गोस्वामी जी ने इस ग्रन्थ की रचना करने से पूर्व देश, जाति और धर्म का भली भाँति अध्ययन कर जनसाधारण की मनोवृत्ति को समझने की चेष्टा की एवं मानसरोवर से रामेश्वरम् तक इस देश का भ्रमण किया । तुलसीदास ने अपने विचारों का लक्ष्य केन्द्र राम में स्थापित किया । तुलसीदास ने अपनी काव्य रचना का मूल उद्देश्य लोक मंगल स्वीकार किया है । तुलसी की दृष्टि रामचरित में वर्णित रामकथा के माध्यम से आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना करने की ओर केन्द्रित रही है । गोस्वामी जी ने संयुक्त परिवार भाई-भाई और राजा-प्रजा का आदर्श स्थापित किया । उस समय राजवंशो में सत्ता के लिए संघर्ष हो रहे थे, देश की राजनीतिक स्थिति सोचनीय थी ।

तुलसी ने ऐसे उथल-पुथल के समय में मानस में राम को बन में भेजकर और भरत को राजविरक्त दिखाकर देश में नवचेतना एवं राजनीतिक चेतना का संचार किया । भरत यदि चाहते तो राम वन गमन का लाभ उठाकर स्वयं को अयोध्या का राजा घोषित कर सकते थे पर भरत ने ऐसा नहीं किया । राम को भी भरत की भक्ति पर पूर्ण विश्वास है । राम को अपने राष्ट्र अपने समाज और अपने धर्म की मर्यादा का ध्यान था और इन्हीं बस कारणों से हम आज भी उनका गुणगान एवं अनुशरण करते हैं । राम को भरत के शील पर कभी शंका नहीं हुई वे कहते है-

भरतहिं होइ न राजमदु विधि हरिहर पद पाइ ।
कबहुंकि कांजी सींकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥

इसीप्रकार तुलसी ने आदर्श राजा की तुलना मुख से करते हुए लिखा है -

मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कहुं एक ।
पालइ पोसइ अंग तुलसी सहित विवेक ॥

तुलसीदास समाज सुधारक भी थे इसीलिए उन्हें लोकनायक कहा जाता है । उनके समय में कर्मकाण्ड प्राबल्य पर था । निम्न वर्णों की स्थिति ठीक नहीं थी । शैव-वैष्णव स्मार्त यावत् आदि आपस में संघर्ष रत थे । गोस्वामी जी ने इसका समाधान अपने अनुसार प्रस्तुत किया । तुलसीदास वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे, वे वेदां के कर्मवाद सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कहा भी -

कर्मप्रधान विश्व करि राखा
जो जस करहि सो तस फल चाखा ।

मानस में राम को शिव का शिव को राम का अनन्य भक्त बताकर गोस्वामी जी ने शैव-वैष्णव के आपसी कलह को दूर करने की चेष्टा की । उन्होंने राम के मुख से स्वयं कहलवाया-

शिव दोही मम दास कहावा
सो नर सपनेहु मोहि न थारवा ॥

एक ओर दोनों में समन्वय स्थापित किया दूसरी ओर राष्ट्रवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । राम उस समय के हिन्दुस्तान की राष्ट्रिय एकता के प्रतीक है ।

तुलसीदास शंकर के मायावाद का खण्डन कर जगत को सत्य मानते हैं, क्योंकि यदि राम हैं तो इस संसार से परे नहीं हो सकते हैं । तुलसी के अनुसार ब्रह्म रूप में बंधा है और उसके रूप की कोई सीमा नहीं है -

हरि व्यापे सर्वत्र समाना,
प्रेम से प्रकट होइ मैं जाना ।

अतीत की बहुत सी दार्शनिक प्रणालियाँ और वर्तमान की उपासना पद्धतियाँ तुलसी में मिल गयी थी । उनके विचारों और पद्धतियों का प्रभाव समाज में एकता लाने की आवश्यकता के कारण हुआ ।

एटकिन्स नामक पादरी ने 18वीं सदी में 'रामचरित मानस' का अनुवाद किया । रूस के वारानिक्वोक ने 20 वीं सदी में रूसी भाषा में 'मानस' अनुवाद किया । यद्यपि वे नास्तिक थे । तुलना करने पर मानस लैटिन और यूनानी भाषा के सर्वमान्य ग्रन्थों से श्रेष्ठ सिद्ध होता है ।

गोस्वामी तुलसीदास एक ऐसे रचनाकार है जिनकी प्रासंगिकता शाश्वत बनी रहेगी । तुलसी के राम, उनका 'रामचरित मानस' एवं मानस के सभी पात्र हमेशा प्रासंगिक रहेंगे । जब तक इस संसार में रावणत्व शेष रहेगा तब तक राम की आवश्यकता का अनुभव किया जाएगा और जब तक राम की आवश्यकता का अनुभव किया जाएगा तब तक उनके अनन्य अन्ध भक्त तुलसी प्रासंगिक बने रहेंगे । तुलसीदास दूसरे के हित स बढकर कोई हित नहीं मानते थे–

परहित सरसि धर्म नहि भाई व्यक्त करने वाला कोई महात्मा न ही हो सकता है । ऐसे महान रामभक्त को हमारा शत् शत् नमन ।

सन्दर्भग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र ।
3. रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास
4. विनय पत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास ।
5. अन्तर्जाल
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. जय नारायण वर्मा।

★★★

Gandhian Theme in Raja Rao's *Kanthapura*

Dr. (Smt.) Shweta Sood

The novel *Kanthapura* depicts Raja Rao's in-depth understanding of Swaraj struggle and its consequences on the Indian people. *Kanthapura* is a story of how Gandhi's struggle for independence from the British came to a typical village Kanthapura in the South India. The tale is told by an old woman in a dramatic and vivid manner evoking the spirit of India's traditional folk-epics and *Puranas*. The novel is greatly admired and considered a landmark in the history of Indian fiction in English, as it points to a definite stage in the technique of an Indian style of writing in English.

The Indian English novel mirrors more or less the same patterns of growth and development as the novel in the regional languages. With the advent of the Gandhian movement , there came the political consciousness as a consequence of which the creative awareness stood classified under the influence of ideas and events of contemporary history, depicting the contemporary and the complex destiny of India.

There is a rich corpus of novels dealing with the multifaceted arrays of life in India. Renowned novelists like Mulk Raj Anand and R.K. Narayan have brought both width and coverage to the Indian English novel by insistently drawing their inspiration from the Indain sources. Raja Rao, with his insistence on the Indian spirituality and religiousness, conveys in his novels a sense of metaphysical strength and visionary aspect. India as a way of life, a concept more than a country, is at the center of Raja Rao's work; the "matter" of India so perceived transforms the novels into something more than a documentary artifact, a symbolic art entailing allegory, myth and ritual. As K. R. Srinivas Iyengar points out: Roughly contemporary with Mulk Raj Anand and R.K.

Narayan, Raja Rao makes with them a remarkable triad, affiliated with them in time and sometimes in the choice of themes but not in his art as a novelist or in his enchanting prose style. A novelist and a short story writer, he too is a child of the Gandhian age, and reveals in his work, his sensitive awareness of the forces let loose by the Gandhian Revolution as also of the thwarting of studying pulls of past tradition….his art is effectively tethered to his immutable ancient mooring with the strong invincible strings of his traditional Hindu culture (386).

In dealing with the thematic aspect, the novelist reflects significant differences in historical perspectives and narrative values. Raja Rao, for instance, goes beyond mimetic realism and naturalism and dramatizes the natural struggle as a mythic and symbolic event. His Kanthapura is a mythic soil, embedding in its structure the community's immemorial tradition and beliefs; it is a symbol of India's past, present and future. The main theme of the novel is the impact of the Gandhian freedom movement on the character of the people of Kanthapura. *Kanthapura* is a Gandhian novel. It is the portrayal of the resurgence of a small and slumbering village under the impact of Gandhi. The village is seen as a living entity, more vigorous than man in relation to Gandhi's freedom movement.

In *Kanthapura*, Raja Rao depicts the story of the effect of Gandhian ideals upon a small village community highlighting the various dimensions viz, how in that community caste barriers broke down; how the women took their rightful place; how the community felt no longer isolated; and how for a great national cause the people sacrificed everything, their hearths and homes, their lands and even their lies, willingly and without any bitterness. The wave of the Gandhian movement covered the whole country. What happened in Kanthapura was repeated at several places. The novel is truly considered an epic of modern India. The novel resounds with the slogan "Mahatma Gandhi ki Jai," and the condemnation of the British and their sycophants. The theme of the novel is not

merely political; it includes in its arena, social, religious and economic aspects viewed in the light of the Rama-Sita-Ravana myth and numeral references to the history, scriptures and mythology of India.

Raja Rao in *Kanthapura* presents the story of a South Indian village during the non-cooperation days. It projects the theme of Gandhian impact on a village community. *Kanthapura* is narrated by a village grandmother in a series of happenings. Moorthy is a follower of Mahatma Gandhi. Moorthy after adopting the Gandhian Ideology gives up his studies in the city and returns back to his village. He gives up foreign clothes and goods and wears hand-woven ***Khaddar***. He encourages the people of his village to use native things and become independent of foreign goods. He guides people about 'Swaraja', 'Kaddar' etc. In order to encourage the concept of ***'Swaraj'*** or 'home rule' he visits each house and distributes free ***Charkhas*** so that every person of his village may become a part of the struggle. He explains the Gandhian principles and encourages them to follow the same. Like Gandhi, Moorthy believes in non-violence. He asks people to make their struggle non-violent. They should love their enemies even if the later may hate them or even act violently.

Jain Ramaacharm's 'Harikatha' too has the overtones of 'Swaraja'. Moorthy works for the uplift of the untouchables and becomes arival of the orthodox Hindus. He is ex-communicated by local guardians like Swami Atmananda, the great Vedantic philosopher. He is put behind the bars for his nationalistic activities and sentenced to three month's imprisonment. After having completed his term of imprisonment, Moorthy returns and starts his Civil Disobedience Campaign among the laborers whom he incites not to pay their taxes. Soon he wins the hearts of the village community. The movement gains momentum and the police opens fire in the midst of 'Vandematram' and 'Inqualab Zindabad'. The style of the narration of the story makes the novel more a 'Gandhipurana' than a piece of mere fiction. On the

symbolic plane "Gandhi is the invisible 'God' and Moorthy is the invisible 'Avtar'. The reign of the red is the Asuric rule and it is assisted by Devas, the 'Saryagrahis'... Bade Khan, the policeman is the symbol of oppression." The atmosphere of 'Kanthapura' is surcharged with nationalistic spirit. It is the story of 'Satyagraha Movement,' 'Lathi' charge, and the ruin that followed. The impact of Gandhi conveyed through Moorhty, transforms the life of the entire village community. All the people of the village play their significant part in the story.

The impact of the movement on Kanthapura is evident in the hectic activities of the people who assemble at the river, take dip into water and participate in the rally at Gauri festival. Their march serves the three fold purpose defiance to the government, a device to call upon the people to spin daily and to leave altogether the idea of the holy Brahmin and the untouchable Pariah. Moorthy dreams of building "a one thousand pillaged temple, whether a Brahmin one bangle-seller, pariah or priest, we are all one, one as the mustard seed in a sack of mustard seeds, equal in shape and hue and all...Brother we are yoked to the same plough." The call of the Mahatma sings in the hearts and minds of Kanthapura people. The march as a pilgrimage not only defines their unity but also lends a "religious hue" to the political issue. The Mahatma is shown as the "Sahayadri Mountain," as Raja Harishchandra, as a hero who is welcomed by thirty thousand men, women and children on his way to Dandi; Moorhty is the "Small Mountain" and the volunteers are the pilgrims. The characters, Ratan, Rangamma and Venkamma also, like the legendary heroines of India, pursue the ideals of Mahatma Gandhi's weapon of non-violence in a society in which Bade Khan threatens to squash Range Gowda like a bug, the Sahib violates the virgins and the police perpetuate atrocities on the people.

The novel *Kanthapura* seems to be driven by impulses other than the artistic, however, it is not a political novel though assured by politics; its economic and social concerns and the religious undertones are

incorporated into myth and legend. All this is done precisely in the manner in which Gandhiji attempted to "spiritualize" politics. As Amaoury de Reincourt points out: "With Gandhiji, it was the history less masses of India who rose to political power and attempted withdraw from contemporary history, to husk back to an imitable past. With Gandhiji for a time being eliminated, political action did not take place in the continuous flow of time, but in a series of spasmodic presents unconnected with one another… He spoke to the masses of India in the language of the timeless religious myths. He abstracted in true Indian tradition, the element of eternity from time, sought for religious truths, not historical significance (287).

To conclude, Raja Rao's*Kanthapura* is a revolutionary work in Indian fiction. Here the Indian nationalism is "re-mythicized" as a puranic struggle in which truth triumphs over untruth. The struggle between the 'red-men' and the satyagrahis is transformed into an anthropomorphic event. The struggle of the people with the red-men, their readiness to come out of their historical apathy and plunge themselves into 'swarajayajna,' the Satyagraha, with a sacramental passion are projected by the author with passionate indulgence and conviction.Hence it is the Gandhian Ideology which makes the plot of the novel to develop and not Gandhi himself. As Gandhi influences the politics at national level, Moorthy becomes the Gandhi of Kanthapura and does the same things. Thus *Kanthapura* is a mini-nation with a Gandhi of itself i.e. Moorthy.

Works Cited

1. Iyengar, K.R.Srinivasa. *Indian Writing in English*.2nd Edition. Bombay: Asia Publishing House, 1973. Print.
2. Kriplani, Krishna. *Modern Indian Literature: A Panaramic Glimpse.* Bombay: Nirmala Sadanad Publishers. 1968. Print.
3. Mukherjee, Meenakshi. *The Twice Born Fiction: Themes and Techniques of the Indian Novel in English*. Delhi: Arnold Heinemann, 1974. Print.
4. *Realism and Reality: The Novel and Society in India*. New Delhi: Oxford University Press. 1985. Print.

5. Naik, M.M. *Raja Rao*. New York: Twayne Publishers. 1972. Print.
6. Narsaimhaiah, C.D. *Raja Rao*. New Delhi: Arnold Heinemann. 1973. Print
7. Raja, Rao. *Kanthapura.* New Delhi: Orient Paperbacks, 24th Printing, 2008. Print.
8. Ramamurti, K.S. *Rise of the Indian Novel in English*. New Delhi: Sterling Publishers. 1987. Print.
9. Reincourt, Amoury de. *The Soul of India*. London: Jonathan Cane, 1938. Print.

Contract Teacher (English)
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K.J.Somaiya Sanskrit Vidyapeetham
Vidyavihar, Mumbai-400077

★★★

वर्तमान जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की भूमिका

✍ डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार

योग शब्द का उद्‌गम संस्कृतभाषा के **युज् युजिरे** धातोः से हुआ है । इसका अर्थ है जोडना अथवा एकत्र करना । हमारे देश में प्राचीन काल से ही ऋषियों एवं मुनियों ने योगावस्था तथा ध्यानावस्था में प्रकृति और ब्रह्माण्ड की खोज की तथा उन्होंने भौतिक और आध्यात्मिक सत्ता के नियमों का ज्ञान किया था और विश्व में उन नियमों के आधार पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त की थी । ब्रह्माण्ड के नियमों, प्रकृति के नियमों और मूल तत्वों से पृथ्वी पर जीवन की तथा ब्रह्माण्ड में कार्यरत शक्तियों का सम्पूर्ण संसार में और आध्यात्मिक पर प्रभाव की जांच की ।

योग हमारे स्वास्थ्य पर किस प्रकार प्रभाव डालता है तथा स्वास्थ्य के लिए योग की क्या भूमिका है? इस सम्बन्ध में **श्री रामकृष्ण परमहंस जी** ने कहा है –**'' दूध में डूबे हुए चावल के समान मानव को निर्बल नहीं बनना चाहिए क्योंकि वह कुछ भी करने में समर्थ नहीं हाता है और न कुछ पाने में समर्थ होता है अपितु शक्तिशाली पुरुषार्थवान् पराक्रमी मानव सब कुछ करने में समर्थ होता है और सब कुछ प्राप्त कर सकता है।**'' जैसा कि भगवद्‌गीता के द्वितीय अध्याय के पचासवें श्लोक में कहा गया है । तद्यथा–

'' बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥''

अर्थात् समान बुद्धियुक्त मनुष्य पुण्य और पाप दोनों को इसी प्रकार संसार से त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है,

इसलिए तुम समत्वरूप योग में लगो, यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता पाने का अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त होने का उपाय है।

योग एवं स्वास्थ्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए **स्वामी विवेकानन्द ने कहा है ''कि भारत में भगवद्गीता, कुरान, बाईबिल एवं धार्मिक ग्रन्थों की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी आवश्यकता फुटबाल आदि खेलों के मैदानों की है''।** अर्थात् स्वामी जी स्वस्थ रहना बालक के लिए जरूरी है, न कि शास्त्रों का अध्ययन प्रथम आवश्यकता है ।

न केवल भारतीय विद्वान योग और स्वास्थ्य के लिए चिन्तित हैं या सोचते हैं, अपितु पाश्चात्य विद्वान् रूसो, फ्रोबेल, हरबर्ट स्पेन्सर आदि भी स्वास्थ्य के लिए सम्पूर्ण शिक्षा की बात की है ।

हरबर्ट स्पेन्सर के मतानुसार-'' **व्यक्ति की पूर्णाभिव्यक्ति के लिए शारीरिक, नैतिक एवं मानसिक क्रियाओं की आवश्यकता है।''**

फ्रोबेल के अनुसार- **''यदि मानव का सर्वांगीण विकास चाहते हैं, तो शारीरिक एवं मानसिक विकास अपेक्षित है ।''**

अत: यही एकमात्र कारण है कि सम्पूर्ण विश्व दैनन्दिन समस्याओं के समाधान के लिए योग को अपनाने पर बल देता है, क्योंकि योग स्वयं को समझने, जीवन का प्रयोजन एवं उद्देश्य और ईश्वर से हमारे सम्बन्ध की जानकारी के साथ उससे हमारा तादात्म्य स्थापित करने में सहयोग करता है । आध्यात्मिकता की दृष्टि मं योग ब्रह्माण्ड के स्व के साथ वैयक्तिक स्व के शाश्वत परमानन्द मिलन का एवं सर्वोच्च ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है । वर्तमान में योग की प्रसिद्धि एवं शिक्षा न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है । यह शिक्षा हमें शारीरिक स्वास्थ्य,

श्वास, प्राणायाम, एकाग्रचितता, तनावरहित और अवधान को व्यावहारिकता से जोडती है । जो समस्त प्राणियों के लिए सहायक एवं लाभदायक है । इस शिक्षा प्रणाली ने विश्वस्तर पर योग केन्द्रों, प्रौढशिक्षा केन्द्रों, स्वास्थ्य संस्थाओं, क्रीडास्थलों, पुर्नस्थापना केन्द्रों, स्वास्थ्य विहारों की स्थापना पर बल दिया । यह अयोग्य, बीमार, दिव्यांग एवं असाध्य रोगों में स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को योगाभ्यास द्वारा स्वस्थ बनाने में सहयोग करती है । दैनिक जीवन की भागदौड में प्रतिदिन प्रयोग एवं अभ्यास से न केवल शारीरिक, मानसिक अपितु आध्यात्मिक पक्ष को भी सुदृढ करने पर बल देती है । योग द्वारा प्रतिपादित सकारात्मक विचार दृढता अनुशासन सर्वोच्च के प्रति अभिविन्यास, प्रार्थना, दयालुता, आत्मज्ञान एवं आत्मानुभूति का मार्ग प्रशस्त करते है।

दैनिक जीवन में योग के मुख्य उद्देश्य/लक्ष्य निम्न हैं-

1. शारीरिक स्वास्थ्य एवं कुशलता के लिए ।
2. मानसिक स्वास्थ्य एवं कुशलता के लिए ।
3. सामाजिक स्वास्थ्य एवं कुशलता के लिए ।
4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं कुशलता के लिए ।
5. यथार्थ ज्ञान के लिए ।
6. प्रकृति के स्वरूप में आत्म स्थिति के लिए ।
7. एकत्व बहुत्व के यथार्थ के लिए ।
8. उत्तम नागरिकों का विकास के लिए ।
9. नवीनतम खेलों की जानकारी के लिए ।
10. प्राथमिक चिकित्सा का ज्ञान ।

लक्ष्य प्राप्ति के साधन-

1. सभी जीवों के प्रति सहयोग एवं प्रेम भाव की स्थापना।
2. जीवन के प्रति सम्मान करना ।
3. प्रकृति एवं पर्यावरण का संरक्षण करना ।

4. मानसिक शान्ति की स्थापना ।
5. पूर्ण शाकाहारी भोजन की व्यवस्था करना ।
6. शुद्ध विचार एवं सकारात्मक जीवन शैली अपनाना ।
7. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यास पर बल देना ।
8. सभी देशों, संस्कृतियों एवं धर्मों के प्रति आदर रखना ।
9. सभी के प्रति सम्मान एवं सहानुभूति रखना ।

शारीरिक स्वास्थ्य -

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में योग, श्रेष्ठ आसनों आर प्राणायामों की आष्टांगिक प्रणाली यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का विस्तृत वर्णन है, जो सभी के सर्वांगींण विकास के लिए लाभदायक है । **पाश्चात्य चिकित्सक पैरासेलसस ने कहा है कि -''स्वास्थ्य ही सब कुछ नहीं है, किन्तु स्वास्थ्य के बिना सब कुछ शून्य है''।** अतः शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए शारीरिक व्यायाम, आसन, प्राणायाम आवश्यक है। ये शरीर को तनावरहित, विश्राम एवं शिथिलता प्रदान करते हैं । स्वास्थ्य संरक्षण के लिए भोजन का भी विशेष महत्व है यह शरीर, मन स्वभाव और गुणों को परिपुष्ट करता है। भोजन हमारी शारीरिक उर्जा और जीवन के अस्तित्व का स्रोत है । अतः योग के साथ भोजन की संतुलित मात्र भी स्वास्थ्यप्रद है ।

मानसिक स्वास्थ्य -

सामान्यरूप से प्रत्येक व्यक्ति मन और इन्द्रियों को नियन्त्रित न करके उनके अनुसार आचरण करता है । मन को वश में करने के लिए आंतरिक विश्लेषण करके अधीन लाने का प्रयास करना चाहिए, जिससे मन की शुद्धता बनी रहे । नकारात्मक विचार शरीर में असंतुलन उत्पन्न करते हैं। जो शारीरिक कार्यों पर दुष्प्रभाव डालते हैं। ये सभी अनेक दुखों एवं बीमारियों के कारण हैं । विचार की स्पष्टता, आंतरिक स्वतन्त्रता,

संतोष और एक स्वस्थ आत्मविश्वास मानसिक कल्याण का आधार है । इससे हम नकारात्मक गुणों और विचारों का हल पाने का प्रयास करते हैं और सकारात्मक विचारों और व्यवहारों को विकसित करने का लक्ष्य सम्मुख रखते हैं ।

योगाभ्यास, नैतिक सिद्धान्तों का पालन, सत्संग करना, मन को शुद्ध एवं स्वतन्त्र रखने के लिए सत्साहित्य का अध्ययन एवं महापुरूषों के प्रेरक कथनों को आत्मसात् करना, आत्ममनन ध्यान द्वारा आत्मनियन्त्रण और आत्मविश्लेषण करने से विकारों एवं इच्छाओं का दमन किया जा सकता है ।

सामाजिक स्वास्थ्य –

सामाजिक स्वास्थ्य के सम्बन्धा में विवेकानन्द जी ने कहा है कि, '' मानव जाति को विनाश से बचाने के लिए और विश्वास की ओर अग्रसर करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति को पुनः स्थापित किया जाए, जो अनायास ही सारी दुनिया में प्रचलित होगी । यह उपनिषद और वेदान्त पर आधाारित संस्कृति ही अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर मजबूत नींव बनकर उभरेगी ।'' यह स्थिति वर्तमान में योग के रूप में सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। आज विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक योगाभ्यास, ईशवन्दना एवं खेलकूद द्वारा छात्रों के शरीर, मन और आत्मा की शुद्धता पर बल दिया जा रहा है । योग एवं शारीरिक व्यायाम से छात्रों एवं सामाजिक लोगों के मानसिक विकारों एवं समस्याओं को दूर किया जा रहा है । स्वास्थ्य परीक्षण एवं निर्देशन परामर्श द्वारा समाज में शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन को बनाने का प्रयास हो रहा है।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य –

हमारे देश में योग की परम्परा के जीवन्त उदाहरण हम साम्प्रदायिक रूप में देख सकते हैं । योग मुस्लिम सम्प्रदाय की

नमाज पद्धति में है, जो नमाज के आसनों के रूप में देखा जा सकता है। उसी प्रकार बौद्धधर्म की विपश्यना पद्धति भी योग पर आधारित है । हिन्दू धर्म की संस्कृति के पोषक के रूप में स्वीकृत सूर्य नमस्कार आज प्रत्येक विद्यालय में प्रार्थना सभा में दिखाई देता है । वह भी आसनों का पर्याय बन गया है ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि योग के बिना वर्तमान भाग दौड की जिन्दगी में स्वास्थ्य को उत्तम बनाना असम्भव प्रतीत हो रहा है, क्योंकि यदि हमें समाज, देश, परिवार के एि कुछ करना है तो तन, मन और विचारों की आत्मीयक दृष्टि से स्वच्छ, स्वतन्त्र एवं स्वस्थ रहना आवश्यक है। यह सभी योग, योगाभ्यास, आसन, प्राणायाम के प्रतिदिन आचरण से ही पाया जा सकता है। **''पहला सुख निरोगी काया''**

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. श्रीमद्भगवद्गीता, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी,2000।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2002।
3. योगदर्शन, विद्याभवन प्रकाशन, नई दिल्ली,2005।
4. योगमींमासा, चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी,2006।
5. शिक्षा में स्वास्थ्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,2010।

सहायकाचार्य (शिक्षाशास्त्रविभाग)
श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मा. वि.),
नई दिल्ली-११००१६.

★★★

भारतीय दर्शन में योग

✍डॉ. प्रकाश वर्मा (सोनी)

भारतदर्शन में योग एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द है । यह शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराणों में आदि काल से ही व्यवहार में आ रहा है । आत्मदर्शन व समाधि से लेकर कर्मक्षेत्र तक में योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है । भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि-मुनियों से ही योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है । भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि मुनियों से ही योग का प्रारम्भ माना जाता है । बाद में कृष्ण, महावीर और बुद्ध ने इसे अपनी तरह से विस्तार दिया । इसके पश्चात् पतंजली ने इसे सुव्यवस्थित रूप दिया । भारत के आधुनिक संतों ने तो गीताके योग का प्रचार सारी दुनिया में किया ह । गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण योग को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते है। अनुकूलता-प्रतिकूलता, सफलता-विफलता और जय-पराजय....इन समस्त भावों में आत्मस्थ रहते हुए सम रहने को भी योग कहते है । अनेक सकारात्मक ऊर्जा लिए योग का गीता में भी विशेष स्थान है । भगवद्गीता के अनुसार -

योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ २.४८

अर्थात् दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, शीत और उष्ण आदि द्वन्दों में सर्वत्र समभाव रखना योग है । महर्षि अरविंद का मानना है कि, परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना तथा इसे प्राप्त करना तथा इसे प्राप्त करना ही सब योगों का स्वरूप है ।

पतंजली योग दर्शन के अनुसार - योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (पातंजल योग प्रदीप, समाधिपाद 2) अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है ।

पिछले दिनों भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप (21 जून 2015 को सारी दुनिया के साथ और समवेत स्वर में प्रथम अंतर्राष्ट्रिय योग दिवस बनाया जाता है । इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 11 दिसम्बर, 2014 को घोषणा की थी, जिसके क्रम में पहली बार 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाने लगा है ।)

योग का महत्त्व एवं लाभ

ज्ञान, दर्शन और चरित्र रूपी रत्नत्रय योग ही परम उच्च मोक्षपद को प्राप्त करने का उत्तम साधन है ।

ज्ञानदर्शनचरित्ररूप रत्नत्रयात्मक ।
योगौमुक्तिपदप्राप्तानुप्रायः परिकीर्तितः ॥ योगप्रदीप, 113

यह योगशास्त्रों का उपनिषद है मोक्षप्रदाता है तथा समस्त विघ्नबाधाओं को शमन करनेवाला है इसलिए कल्याणकारी है ।

शास्त्रस्योपनिषद्योगो योगो मोक्षस्य वर्तनी ।
अपायशमनौ योगो, योगकल्याणकारकम् ॥ योगमहात्म्यद्वात्रिंशिका, 1

यह इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति करनेवाला है इसलिए एवं चिन्तामणि है धर्मों में प्रधान पर योगसिद्धि स्वयं के अनुग्रह अथवा अध्यवसाय से मिलती है ।

योगकल्पतरू श्रेष्ठौ योगश्चिन्तामणि पर ।
योगः प्रधानं धर्माणां योगः सिद्धेः स्वयंग्रह ॥ योगबिन्दु, 37

जो इन्द्रियों के वश में होते है । वे योगी नहीं है ।

सो जोयउ जो जागयई णिम्मलि जोइयजोइ ।
जो पुणु इंदियवसि गयउ सो इह सावयलोई ॥ पाहुडदोहा 63

सच्चा योगी वही है जिसने श्वास को जीत लिया है जिसके लोचन निस्पन्द हो गये है ।

णिज्झियसासो णिप्फद लोमणो मुक्कसयलवावारो।
एयाहं अवत्थ गओ सो जोयउ णत्थि संदेहो ॥ पाहुडदोहा, 203

आज का मनुष्य ऐश्वर्य तथा प्रसाधन सामग्री से पूरिपूरित होता हुआ भी कुण्ठा और घुटन के पाटों के मध्य पीसा जा रहा है । मिल की चिमनियों की तरह स्पर्धा ईर्ष्या और मात्सर्य की कालिख से विश्व को काल स्याह बनाने का प्रयत्न किए जा रहा है और उसकी महत्त्वाकांक्षा भास्मासूर के वरदान की तरह आत्माघाती रूप ग्रहण किए जा रही है पता नहीं वह कब और कैसे मानव को निगल जाए ऐसी स्थिति से बचाने और सब प्रकार के तनावों से मुक्त करने के लिए जीवन की रंगशाला में योग ही आनन्द का अद्‌भुत प्रयोग है जो मनुष्य के सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, निन्दा प्रशंसा, मान-अपमान, संयोग-वियोग, हर्ष-शोक, जय-पराजय, जीवन-मृत्यु आदि समस्त परिस्थितों में समता से जोने की कला सिखलाता है ।

भारतीय दर्शन में योग शब्द का प्रयोग बहुत स्थलों में हुआ है । किसी दार्शनिक ने योग अध्यात्म की उन्नत भूमिका पर प्रयोग किया है तो किसी ने व्यवहार की भूमिका पर और किसी ने व्यवहार और अध्यात्म दोनों पक्षों को समुज्ज्वल बनाने के लिए योग का प्रयोग किया है चाहे वैदिक शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध कोई भी हो इसके महत्त्व को भी सभी ने स्वीकार किया है।

साधारण लोग जो योग को एक गूढ और रहस्यमय साधना समझा करते है और उनका उद्‌देश्य तरह-तरह की चमत्कारी और अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त कर लेना मानते है वे वास्तव में योग के यथार्थ तत्व से अनजान ही है इसमें किञ्चित भी संदेह नहीं कि, यो साधन से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक

शक्तियों का पूर्ण विकास होता है । उनकी यहाँ तक वृद्धि की जा सकती है कि साधारणत: उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । पर योग का वास्तविक लक्ष्य या उसकी उपयोगिता इससे कही बढकर है । योगसाधना द्वारा व्यक्ति को शरीर के विभिन्न अंगो तथा इन्द्रियों के कार्य मन की विविध वृत्तियों और आत्मा का सूक्ष्म शक्तियों तथा उसके स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान हो जाता है । यह ज्ञान मानव जीवन को सहज सत्य और सद्‌गुणमय बनाने में बहुत सहायक होता है और इसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् मनुष्य निम्नकोटि के स्वार्थ के ऊपर उठ जाता है और अपने व्यवहार में छल, कपट, हिंसा, चोरी, असत्य, निर्दयता, बेईमानी, दृष्टता जैसी बातों का समावेश न होने देन के लिए सावधान रहता है ।

सांसारिक कार्यो में सबसे अधिक विघ्न आलस्य है योगाभ्यास द्वारा शरीर मलरहित होकर हल्का हो जाता है, स्वस्थ रहता है, विषय वासना संयमित हो जाती है । क्रान्ति बढ जाती है । स्वर में माधुर्य आ जाता है । ये सब योग के आरम्भिक लाभ है योगी पर रोग बुढापा, कष्टों का कुछ प्रभाव नहीं पडता । ये ही सब जीवन की सफलता के साधन है जो इन विशेषताओं को प्राप्त कर लेगा । वह सहज में ऊँचे से ऊँचे लक्ष्य हो प्राप्त कर सकता है ।

खेलों के प्रतिस्पर्धा ने मनोरंजन के साथ अनेकानेक लाभ भी दिये है । किन्तु भविष्य में होनेवाले घातक दुष्परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए तथा खेल में अधिक स्फुर्ति व लगन प्राप्ति के लिए योग का खिलाडियों के जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है । इसे स्वास्थ्य/आयुष विभाग भी अनुभव करता है । कई देशों में स्वास्थ्य विभाग में खेलकुद निर्देशक व खिलाडियों के साथ में रहती है । देश एवं विदेश के कई विद्यालयों/महाविद्यालयों/

विश्वविद्यालयों में योग विभाग भी है । विभिन्न शोधों से मालुम हुआ है कि, खिलाडियों के लिए योगाभ्यास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । अर्जुन की दृष्टि की तरह यदि हमारा ध्यान भी लक्ष्य पर केन्द्रित होगा तो निश्चित रूप से सफलता का वरण कर पायेंगे । पर इसके लिए सतत योग, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान का अभ्यास आवश्यक है ।

निम्न खेल जिनमें योग के अभ्यास से ओर अधिक सफलता प्राप्त कर सकते है -

गोल्फ

गोल्फ में चित्त की एकाग्रता का विशेष महत्त्व है । गोल्फ के खिलाडी का ध्यान पूरे समय अपनी गेंद पर व उस छिद्र पर लगा रहता है जिसमें उसे गेंद डालनी है । इन खिलाडियों के लिए चित्त को एकाग्र करने के लिए योग क्रियाएँ (त्राटक) एवं प्राणायाम बहुत लाभप्रद है ।

टेनिस

टेनिस खेलनेवालों की कलाई व पैरों का विशेष उपयोग करते ह । इसमें खिलाडी को आनेवाले टेनिस बॉल का अंदाजा लगाना पडता है, कई बार आपने देखा होगा कि, मस्तिष्क तनावरहित होता और चित्त प्रसन्न होता है तो हाथ का बल्ला (रैकेट) अंजाने ही बॉल पर पड जाता है । पर जब मन चिन्ताग्रस्त, तनाव में या थकान में हो तो तब हर शॉट चूक जाता है । टेनिस के खिलाडियों को तनावरहित मन एवं थकान रहित तन की प्राप्ति के लिए योगाभ्यास की आवश्यकता है ।

हॉकी

हमारा राष्ट्रीय खेल हॉकी में तेज गति से भागना रहता है एवं बुद्धि का उपयोग करते हुए विपक्षी हमले से बचाना होता है

। तेज धूप में लगातार अपने आप को फीट रखना होता है ऐसे में आसानो व प्राणायाम का अभ्यास बहुत उपयोगी है ।

क्रिकेट

आज क्रिकेट के दिवाने पूरी दुनिया मे है । क्रिकेट के मैदान में खिलाडियों को थकान रहित कुल-कुल रहने के साथ-साथ साथी खिलाडी की मनोदशा को पडने वाला भी होना चाहिए । बेहतरीन टीमवर्क से बडे मुश्किल मैच भी जीते जा सकते है । इसके लिए खिलाडी को आवेग रहित, तनाव मुक्त रहना होता है । स्फूर्ति एवं तत्परता का समन्वय बहुत जरूरी है । इसके लिए सूर्य नमस्कार, ओम की ध्वनी, प्राणायाम आदि का अभ्यास हितकर है ।

तैराकी

तैराकों को प्राणायाम की क्रिया से बहुत लाभ होता है । विशेषत: जल के भीतर की दौड में कुंभक के प्रयोग से वे विशेष सफलता प्राप्त कर सकते है ।

कुश्ती

देशी खेल कुश्ती में शारीरिक शक्ति के साथ सुझ-बुझ की भी आवश्यकता होती है । दाव-पेच के इस खेल में सूयनमस्कार, मालिश, प्राणायाम बहुत उपयोगी है ।

कबड्डी

कबड्डी के खेल में एकाग्रता, दीर्घश्वास, स्फूर्ति, शारीरिक शक्ति का होना बहुत जरूरी है ऐसे में शरीर को फीट रखना जरूरी है इसके लिए निरंतर योगासन, प्राणायाम, मुद्रा का प्रयोग बहुत ही उपयोगी है ।

दौड

दौड एक ऐसा खेल है जिसका सबसे अधिक लाभ है । खेल के साथ भी और खेल के बाद भी । दौड का

श्वास-प्रश्वास के साथ संबंध होता है । यदि धावक योगाभ्यासी होगा तो निश्चित ही वह कम समय में अधिक दूरी बिना किसी थकान के तय कर सकता है ।

शतरंज

मस्तिष्किय खेल में शतरंज सबसे श्रेष्ठ है । विपक्षी खिलाडी को मात देने के लिए उनकी चाल को समझते हुए उनको पराजित करने के लिए मस्तिष्क का तेज होना जरूरी है । क्रोध रहित, एकाग्रता बहुत जरूरी है, इसके लिए ताडासन, शशांकासन, शार्षासन, सूर्यनमस्कार, ओम की ध्वनि, भ्रामरी, अनुलोम-विलोम, प्राणायाम, त्राटक आदि बहुत ही लाभदायक है ।

सौन्दर्य प्रतियोगिता

सौन्दर्य सभी को लुभाता/आकर्षित करता है । उसके प्रारूप भिन्न-भिन्न हो सकते है । दृष्टिकोण में असमानता हो सकती है । परन्तु मनुष्य अनादिकाल से ही सौन्दर्य का उपासक रहा है । हमारे देवी-देवताओं के चित्र हो, किसी नायक-नायिका, महल, स्थल, पशु-पक्षी का अन्य ।

पुरूष महिलाओं की सौन्दर्य प्रतियोगिता भी होती है । शारीरिक सौन्दर्य के साथ बुद्धि चातुर्य की भी परीक्षा होती है । ऐसे भी शरीर से एवं बुद्धि से फीट रहने के लिए योग से उत्तम कोई कुछ भो नहीं है । शुद्धि क्रियाएँ, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, ध्वनि, प्राणायाम, ध्यान एवं मुद्रा के प्रयोग से तन-मन की सुन्दरता प्रतिक्षण रहेगी ।

विभिन्न प्रतियोगिता

गायन, नृत्य, लेखन, संगीत, हस्तकला, वाक्स्पर्धा, चित्रकला, पाककला, आदि में भी योग का अभ्यास हितकर है । साथ ही आजकल के नये नये रियलिटी शो जैसे कौन बनेगा करोडपति, बिग बॉस, इंडिया गोट टैलेंट, नच बलिए, क्वीज शो

आदि में नियमित योग अभ्यास से द्वारा सफलता का वरण किया जा सकता है ।

कई खिलाडियों का ऐसे भी कहना है कि, उनके खेलकूद से ही उनके शरीर का इतना व्यायाम हो जाता है कि, उन्हें योग की जरूरत नहीं । किन्तु हम यहाँ स्पष्ट कर देना चाहते है कि, खेल के व्यायाम और योग के अभ्यास में अन्तर है । खेल चाहे शारोरिक हो या मानसिक, वह स्थूल शरीर से सम्बन्धित है और योग का संबंध आंतरिक चेतना से है । योगासन मात्र शरीर का व्यायाम नहीं है यह प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का व्यायाम है । प्रत्येक नाडी का संबंध मस्तिष्क से होता है । इसके साथ ही योग में श्वास-प्रश्वास पर भी ध्यान दिया जाता है । चक्रों को क्रियाशील किया जाता है । ग्लैण्डस को एक्टिवेट किया जा सकता है । हार्मोन्स में परिवर्तन होता है । योग शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढाता है और दवाओं पर आपकी निर्भरता को घटाता है । योग जीवन को बेहतर बनाने वाली एक जीवन पद्धति है । कुछ अवकाश प्राप्त वयोवृद्ध खिलाडियों से पुछताछ करने पर पता चला कि क्रियाशील यौवन में उन्हें किसी प्रकार की शारीरिक परेशानी नहीं थी परन्तु उम्र बीतने के साथ खेल बन्द करने के पश्चात् उन्हे चलने-फिरने में उठने-बैठने में, पेट, हृदय, मोटापा, डायबिटिज, श्वास आदि की तकलीफों से सामना करना पडता है। कई खिलाडियों जो युवा अवस्था में बॉडी बिल्डर (सिक्स पैक ऐट पैक) रहे उनकी वयवृद्धि होन के साथ अधिक उम्र के लगने लग गए । स्कीन डीली पड गई । कई फिल्म सितारों को निकट से देखने पर प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है ।

योगाभ्यासी का अनुभव उपर्युक्त से विपरित है, उनके शारीरिक व मानसिक रोग तो दूर होते ही है अपितु वृद्धावस्था में भी उन्हें चित्त की एकाग्रता व ध्यान के अभ्यासों के कारण

विशेष आनन्द व उल्लास की प्राप्ति होती है । निश्चित ही खिलाडियों को सफलता व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग को दैनिक जीवन में एक अनिवार्य कार्यक्रम के रूप में स्वीकारना चाहिए । खेलों को ही व्याम समझ लेना गलत है । एक निश्चित उम्र के पश्चात् आपको खेलों का त्याग करना पडेगा । योग का अभ्यास आप हर समय कर सकते है ।

हम यहाँ पर कुछ विशेष लाभप्रद आसनों के नाम बतला रहे है जिनका अभ्यास योग्य शिक्षक के निर्देशन में करना उपयोगी रहेगा । अच्छी तरह से सीख लेने के बाद आप स्वयं कर सकते है ।

शरीर के तीन हिस्से है - पैरों की अंगुली से कमर तक, कमर से लेकर गर्दन से नीचे तक और कंठकुप से पूरी गर्दन का भाग । जोड, रीढ की हड्डी, हाथ की कलाई, पैर, जांघ, कटि/कमर, प्रदेश की अच्छी तरह से मालीश कर उन्हें मजबूत बनाते है । कुछ आसान पेट, पीठ, फेफडें, हृदय के लिए कुछ आसान सिर की ओर विशेष रक्तप्रवाह में सहायता करते है । सभी आसन एक साथ करना भी जरूरी नहीं है । सर्व प्रथम यौगिक क्रिया से आसनों का अभ्यास करें । सरल आसनों के अभ्यास के बाद कठिन आसनों को करे । सूर्य नमस्कार का अभ्यास बहुत ही श्रेयस्कर है । शरीर की क्षमता के अनुरूप अभ्यास जरूरी है ।

हम यहाँ तीन वर्ग बना रहें है ।

1. उन आसानों का समूह है, जिसे सभी खिलाडी उचित प्रशिक्षण के पश्चात् कर सकते है - ताडासन, पादहस्तासन, पवनमुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, योगमुद्रा, शशांकासन, सूर्य नमस्कार, चक्रासन, धनुरासन,

भुजंगासन, शलभासन, हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शवासन ।

2. जिन खेलों में बहुत अधिक दौडना पडता है - ताडासन, पर्वतासन, पादहस्तासन, नटराजासन, पवनमुक्तासन, पादांगुष्ठासन, पश्चिमोत्तानासन, बद्धपद्मासन, उत्थित लोलासन ।
3. जिन खेलों में हाथों पर विशेष जोर पडता है - ताडासन, पवनमुक्तासन, धनुरासन, गरूडासन, द्विहस्तभुजंगासन, मयुरासन, लोलासन, गोमुखासन, उत्थितपद्मासन, ।

सभी आसनों के पश्चात् शवासन/कार्योत्सर्ग ।

कपालभाति, जलनेति, कुंजल, त्राटक, आदि क्रिया, प्राणायाम (दीर्घ श्वसन, नाडी शोधन, अनुलोम विलोम, भस्त्रिका, शीतली, महाप्राण/ओम की ध्वनी) एवं ध्यान का अभ्यास सभी खिलाडियों को करना चाहिए । शंख बजाने का अभ्यास भी करना बहुत ही उपयोगी होगा । खिलाडी यदि प्रतिदिन आधा घंटा भी योगाभ्यास करे तो निश्चित ही खेल में विशेष सफलता तो मिलेगी ही आजीवन स्वस्थ भी रहेगा ।

प्राध्यापक (योगविभाग)
क. जे. सोमैया कला एवं
वाणिज्य महाविद्यालय,
विद्याविहार, मुम्बई

★★★

कबीरदास का भक्तिदर्शन

✍डा.सुनील कुमार शर्मा

परिचय -

भक्तिकाल में विभिन्न कवि हुए जिनमें से अन्यतम कवि निर्गुण भक्ति के उपासक सन्त कबीरदास जी का अवतरण भक्तिकाल में हुआ । कबीरदास जी के जन्म के विषय में बहुत मतभेद हैं, किन्तु इतना अवश्य है कि वे सिकन्दर लोधी क समकालीन थे । नाभादास के भक्तमाल और बील, हन्टर, ब्रिस, मेकलिक, स्मित तथा भंडारकर आदि के इतिहास ग्रन्थों से भी उक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है । कबीरदास ने अपने साहित्य में जयदेव और नामदेव के बारे में बताया है । इससे सिद्ध होता है कि कबीर दास जी इनके पश्चातवर्ती थे । नामदेव का समय तेरहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना गया है । सन्त पीपा ने बडी श्रद्धा से कबीर का नाम स्मरण किया है । इससे स्पष्ट है कि कबीर पीपा से पहले थे । पीपा का जन्म सं. 1871 में हुआ । कबीर चरित्र बोध में 1344 वि. ज्येष्ट सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म तिथि स्वीकार किया गया है । जिसका उल्लेख इस प्रकार है ।

चौदह सो पचपन साल गए चन्द्रवार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रकट भए ॥

कबीर के जन्म के संबन्ध में अनेक किं वदन्तियाँ हैं । कुछ लोगों के अनुसार वे रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए थे । जिसको भूल से रामानन्द जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था । ब्राह्मणी उस बालक को लोक-लाज के भय के कारण लहरतारा नामक

तालाब में फेंक गयी गई थी । कबीर का पालन पोषण नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा परिवार ने किया था । कबीर ने स्वयं को जुलाहा के रुप में प्रस्तुत किया है -

'जाति जुलाहा नाम कबीरा बनि बनि फिरो उदासी ।

कबीर रामानन्द के शिष्य थे कबीर के शब्दों में -

हम कासी में प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये ।

कबीरदास की पत्नी का नाम लोई और पुत्र और पुत्री का नाम कमाल और कमाली था । 118 वर्ष की अवस्था में कबीरदास का मगहर में देहान्त हो गया । हिन्दी साहित्य के इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिरिक्त इतना प्रतिभाशाली व्यक्तित्व किसी कवि का नहीं है । वे परमसन्तोषी, उदार, निर्भीक, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक, सात्विक प्रकृति, बाह्याडम्बर विरोधी तथा समाज सुधारक थे । उनमें एक अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीरदास के काव्य और व्यक्तित्व का आकलन करते हुए लिखा है - 'कबीर की उक्तियों में कहीं कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है । प्रतिभा उनमें बडी प्रखर थी, इममें सन्देह नहीं ।'

कबीर की विलक्षण प्रतिभा पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है हिन्दी साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कवि उत्पन्न नहीं हुआ । भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे ।

उनके सन्त रूप के साथ ही उनका कविरूप बराबर चलता रहा ।

रचनाएँ -

कबीर पढे-लिखे नहीं थे ।

मसि कागद छूवों नहिं, कलम गही नहिं हाथ ।

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे हैं उन्होंने मुँह से बोला और उनके शिष्यों ने उसे लिखा है । कबीर की रचनाओं के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं -

एच.एच. विल्सन के अनुसार कबीर के नाम पर आठ ग्रन्थ हैं । विशप जी. एच.वेस्टकॉट ने कबीर के 73 ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की है रामदास गौड ने 'हिन्दुत्व' में 61 पुस्तकें बताया हैं । लेकिन 'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना बताई गई है । इसमे कबीर के उपदेशों का संकलन उनके शिष्यों द्वारा किया गया है । बीजक के तीन भाग हैं 1. साखी 2. सबद 3. रमैनी जो कि अत्यन्त प्रसिद्ध है ।

कबीरदास का सामाजिक चिन्तन - महात्मा कबीरदास समाज सुधाारक, भक्त, कवि और युग नेता भी थे । कबीरदास जी ने समाज को नई दिशा प्रदान की, वस्तुतः भक्तिकाल में मुस्लिम और हिन्दूओं में आपसी विरोध था । तत्कालीन परिस्थियों को उन्होंने काव्य के माध्यम से यथार्थ चित्रण किया है । उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, अन्धाविश्वासों, रूढियों, साम्प्रदायिक कट्टरताओं, बाह्याड्मबरों पर खुलकर आक्रमण किया है । वे चाहते थे कि समाज को एकता के सूत्र में बाँधकर समाज में जनजागृति की जाए । वे कहते है - बड़ी- बड़ी पुस्तकें पढ़कर संसार में कितने लोग मृत्यु के द्वार पहुँच गए, पर सभी विद्वान न हो सके, कबीर मानते है कि यदि कोई प्रेम या प्यार क ढाई अक्षर ही अच्छी तरह पढ़ लेय अर्थात् प्यार का वास्तविक रूप पहचान ले तो वही सच्चा ज्ञानी होगा -

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

कबीरदास ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रूढियों और परम्परा के मायाजाल को

बुरी तरह छिन्न-भिन्न किया है । एक ओर वे पंडितों को खरी-खोटी सुनाते हैं, और दूसरी ओर मुल्लाओं की कटु आलोचना करते हैं । एक ओर मन्दिर तथा तीर्थाटन आदि की निस्सारता बताते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद और हज-नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते है । वे कहते है -

अरे इन दोउन राह न पाई,
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।

कबीरदास का भक्तिदर्शन-

कबीर भक्तिदर्शन से तात्पर्य दो रूपों में ले सकते है । गुरुभक्ति और भगवद्भक्ति, कबीर ने गुरु भक्ति को प्राधान्यता दी है । वे कहते कि गुरु वह शक्ति है जो भगवद्दर्शन करा सकती है, गुरू बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं है । गुरु अन्धकार से उजाले की ओर ले जाने वाला है । वे गुरू को भगवान से ऊपर मानते है। उन्होंने गुरु भक्ति में कहा है -

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय ।
बलिहारो गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥
कबिरा ते नर अन्धा हैं, जो गुरु कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर ॥
गुरू धोबी सिष कापडा, साबुन सिरजनहार ।
सुरति शिला पर धोइए, निकषे ज्योति अपार ॥
तीरथ गए एक फल, सन्त मिले फल चार ।
सत्गुरु मिले अनेक फल, कह कबीर विचार ॥

दूसरी ओर वे निर्गुण राम भक्ति के समर्थक है । उनके समस्त विचारों में राम नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है । वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे । अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मन्दिर, आदि को नहीं मानते

थ। कबीर वाह्याडम्बर का विरोध करते है । मूर्ति पूजा को लक्ष्य करती हुई उनकी एक साखी है ।

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार ।
था ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार ॥

उपरिलिखित साखी के माध्यम से कबीर कहते है कि पत्थर कि मूर्ति की पूजा करने से भगवत् प्राप्ति होती है तो मैं पहाड़ को पूज लेता हूँ । फिर कहते है उसकी जगह कोई घर की चाकी की पूजा क्यों नहीं करता, जिसमें अन्न पीसकर लोग अपना पेट भरते है । उन्होंने भक्ति के बारे में अनेक दोहें प्रस्तुत किये है जो निम्नलिखित हैं ।

कामी, क्रोधी, लालची इनसे भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय ॥

कबीर भक्ति के बारें में कहते है - जो व्यक्ति कामी, क्रोधी, लालची है वे लोग भक्ति नहीं कर सकते है भक्ति केवल वह कर सकता जो परिवार, समाज, कुल, जाति से मोह त्याग कर देता है वे विरले ही होते है ।

अन्तरयामी एक, तुम आत्मा के आधार ।
जो तुम छोडो हाथ तो, कौन उतारे पार ॥

दूसरी ओर वे भक्ति को संकेत करते हुए कहते हैं - हे भगवान आप अन्तर्यामी हो तुम ही जीवन का आधार हो, अगर आप साथ छोड़ देगे तो कौन इस भवसागर से पार लगायेगा । यहां पर कबीर अपना ईश्वर के प्रति समर्पण भाव व्यक्त करते है।

मैं अपराधी जन्म का, नख दृसिख भरा विकार ।
तुम दाता दुःख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥

कबीर कहते है कि हे प्रभु मैं अपराधी जन्म से हूँ पैर से लेकर सिर अर्थात् शिखा तक मन में पाप भरा हुआ है, फिर

ईश्वर के प्रति भक्तिभाव प्रकट करते हुए कहते आप ही दु:ख का हरण करते है इसलिए मेरा ध्यान रखिये और मेरा उद्धार कीजिए।

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़े हरि भजे, भगत कहावें सोय ॥

कबीर जी कहते है कि जब मनुष्य जगत से नाता जोड़ लेता है तब भक्ति नहीं कर पाता है, जो व्यक्ति दुनियादारी से मोह छोड़कर, हरि का भजन करता है । वही वास्तविक भगत कहलाता है ।

बाहर क्या दिखलाए, अन्दर जपिए राम ।
कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम ॥

कबीर को समाज को संकेत करते हुए कहते है कि भगवद् भजन करते हुए बाहरी दिखावा नहीं करना चाहिए । हमें अन्तर आत्मा से भगवान का भजन करना चाहिए और आगे कहते है हमें दुनियादारी के प्रपञ्च से काम न रखके हमें ईश्वर भक्ति में ध्यान लगाना चाहिए अर्थात जगत को चलाने वाले धनी से काम रखना चाहिए । इसलिए हमें सब कुछ छोड़कर ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए ।

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करे, दु:ख काहे को होय ॥

कबीर कहते है कि मनुष्य का स्वभाव यह है कि ईश्वर को वो दु:ख के समय याद करता है, सुख मे कोई ईश्वर को कोई याद नहीं करता है यदि मनुष्य सुख में याद करता रहे तो द:ख क्यों होगा । इसलिए हमें ईश्वर को सदा सर्वदा याद करता रहना चाहिए ।

पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया गया सोय ।
एक पहर हरि नाम बिन मुक्ति कैसे होय ॥
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की छूट ।

पाछे फिर पछताओंगे, प्राण जाहि जब छूट ॥

कबीरदास जी कहते है कि अभी राम नाम की लूट मची हुई है । अभी तुम भगवान का जितना नाम लेना चाहो ले लो नहीं तो समय निकल पर अर्थात् मर जाने के बाद पछताओंगे कि मैने तब रामभगवान की पूजा क्यों नहीं की ।

कबीर ने भक्ति के बारे में बहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है । जब कबीर अपने को राम का कुत्ता कहते है तो वो दास्य भान प्रकट करते हुए कहते है –

कबीर कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउ ।
गले राम की जेवड़ि, जित खैचे तिउ जाउ ॥

कबीर इस दोहे के माध्यम से समाज को बताना चाहते है कि मैं राम का कुत्ता हूँ और मेरा नाम मुतिया है । मेरे गले में राम नाम की रस्सी पड़ी हुई है उस रस्सी को पकड़ कर मेरे स्वामी राम जिधर मुझे घुमाते हैं मैं उधार ही घूम जाता हूँ ।

सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर का व्यक्तित्व अनोखा है । भक्तिकाल के वे पहले ऐसे कवि है जिन्हें पूर्ण भक्त का दर्जा प्राप्त है । कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था उनका उद्देश्य भगवद्भक्ति करना था । कबीर की भक्ति के केन्द्र में प्रेम है । इस भक्ति के लिए पुरूषोतम अग्रवाल ने लिखा है कि – भक्ति शब्द मूलत: अनुराग और भागीदारी का आशय लेकर ही आया था । भक्ति के रास्ते बहुत कठिन है । जिसके बारे में कवि कहते है –

कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
सीस उतारे हाथ करि, सो पैसे घर माहि ॥

इस प्रेम भक्ति के दरबार में प्रवेश के लिए अहंकार और दंभ को छोडना पड़ेगा, साथ ही साथ भक्त में वह ताकत और होना चाहिए जिसमें अपने घर को जला देने का दमखम हो ।

कबीर हिन्दू और मुसलमानों को समझाते है कि -

हिन्दू कहें मोहि राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना ।
आपस में दोउ लडी-लडी मुए, मरम न कोउ जाना ॥

कबीर कहते है कि हिन्दू राम के भक्त है और मुस्लिम को रहमान प्यारा है, इसी बात पर दोनों लड़ लड़ के मौत के मुंह में जा पहुंचे तब में से कोई सच को जान सका । उनका यह भाव कि ईश्वर एक है आपस में झंगडा छोड़कर भगवद्भक्ति पर ध्यान लगाओ ।

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध ।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद॥

कबीर कहते हैं अपना खुद का घर तो इस जीवात्मा का प्रेम ही है । मगर वहां (ईश्वर) तक पहुचने का रास्ता बड़ा कठिन है, लम्बा इतना कि उसका कहीं छोर ही नहीं मिल रहा । प्रेम रस का स्वाद तभी सुगम हो सकता जब कि अपने सिर को उतारकर उसे पैरों के नीचे रख दिया जाए । कबीर परमात्मा को मित्र, माता, पिता और पति के रुप में देखते हैं, यही तो मनुष्य अत्यन्त करीब रहते है - वे कभी कहते है -

'हरिमोर पिउ, राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं 'हरि जननी मैं बालक तोरा'

अन्त में कबीर कि जो भक्ति है समाज को प्रेरणा, नईदिशा, सामाजिक प्रदान करने वाली है उनकी जो भक्ति है वो वास्तविक चेतना प्रदानकर एवं गुरू भक्ति के साथ ईश्वर के निर्गुण स्वरुप को बल प्रदान करते हुए बाह्याडम्बर का विरोध

करती है । कबीर की रचना जीवन का वास्तविकता का ज्ञान कराते हुए, सच्ची भक्ति के लिए प्रेरित करती है ।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. डा. पुष्पाल सिंह - 'कबीर ग्रन्थावली' अशोक प्रकाशन 1584, नई सड़क, दिल्ली - 5
2. डा. श्रीनिवास शर्मा 'जायसी ग्रन्थावली' अशोक प्रकाशन 1584, नई सड़क, दिल्ली - 5
3. डा. शिवकुमार शर्मा 'हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ' अशोक प्रकाशन 1584, नई सड़क, दिल्ली - 5
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' कमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 889991

संविदाध्यापक (शिक्षाशास्त्र विभाग)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
विद्याविहार, (पूव) मुम्बई - ७७

★★★

दृक्‌श्राव्य माध्यमांसाठी लेखन

डॉ. मिनाक्षी ब-हाटे

आजचे युग हे माहिती तंत्रज्ञानाचे आणि जागतिकीकरणाचे आहे. त्यामुळे नवनवीन माध्यमांमध्ये ह्यात असंख्य परिवर्तन होत आहे. या मागील काळात आपण डोकावून पाहिले तर आपणास असे निर्देशनास येते कि, तेवढे पुरेसे माध्यम भाषेसाठी उपलब्ध नव्हते. तरीही अल्पशा माध्यमातून आपल्यासमोर अतिशय ठामपणे प्रकट होत होती. मात्र आजच्या स्पर्धेच्या युगामध्ये मराठी भाषेच्या आशय अभिव्यक्तीत बदल झालेला आपणास दिसतो. हा बदल भाषेला विकसित करण्यासाठी अतिशय महत्त्वाचा दस्तऐवज मानला जातो. कारण माहिती तंत्रज्ञानाच्या क्षेत्रात व्यवसायाभिमुख कौशल्ये आपण अवगत केली नाही तर अनेक अडचणींना सामोरे जावे लागते.

त्यासाठी क्षमताधिष्ठित गुणांना वाव देणारे अभ्यासक्रम महाविद्यालया मध्ये राबविले जात आहेत. ह्यातून युवकांच्या सर्वांगीण विकासाला उत्तम चालना मिळवून त्यामधून त्यांना रोजगार उपलब्ध करून दिला जाऊ शकतो. यामध्ये अनेक उपक्रम आपण राबवू शकतो. उदा. वृत्तपत्रांसाठी लेखन, माध्यमासाठी बोधचिन्ह, जाहिरात लेखन, महाजालासाठी लेखन, इ.

मराठी भाषा जागतिकीकरणाच्या जाळामध्ये अडकली तेव्हा भाषेच्या आशय आणि अभिव्यक्तीत मोठ्या प्रमाणात बदल झाला. या सर्व माध्यमांचा वापर आपण अनेक भाषेच्या क्षेत्रात कसा करू शकतो, याविषयीची चर्चा प्रस्तुत शोधनिबंधात केली आहे.

प्रस्तुत शोध निबंधासाठी 'दृकश्राव्य माध्मांसाठी लेखन' असा विषय निवडला आहे. विशेषत: विविध प्रसार माध्यमांचे स्वरूप वेगवेगळया प्रकारचे असते. त्यामध्ये काही उपप्रकार निर्माण होतात. तेव्हा त्यांची कार्यशैली स्वतंत्र रूपाने आपल्यासमोर सादर होते. यासाठी कलावंताला काही कौशल्ये अवगत करायची असतात. ही आत्मसात करण्यासाठी आपल्या जवळ अवधान, प्रेरणा, ध्येयनिष्ठा, आकांक्षा, कार्यकुशलता आणि सर्वात महत्त्वाचे म्हणजे महत्त्वाकांक्षा असावी लागते. म्हणजे ते कार्य जोमाने आणि प्रभावीपण अभिव्यक्त होते. मानवी व्यक्तिमत्वासाठी सुद्धा अनेक कौशल्यांची आवश्यकता असते. थोडक्यात, कोणत्याही कलेचा साधर्म्य आपण एखाद्या प्रभावी माध्यमांशी जोडला. त्यातून नाविन्यपूर्णता दिसते.

मुख्यत्वे ह्यात श्रवण, वाचन, लेखन, संभाषण, भाषण करताना भाषेचा वापर मार्मिक असावा लागतो.

दृक् श्राव्य माध्यमांमध्ये समाविष्ट होणा-या उपप्रकारांची ओळख

1. दूरचित्रवाणी
2. महाजाल
3. भ्रमणध्वनी

या तीन दृक्-श्राव्य माध्यमांचा विचार प्रस्तुत शोध निबंधामध्ये केला आहे. ह्या अगोदर थोडक्यात जाहिरातीच्या माध्यमांवर प्रकाश टाकू.

वृत्तपत्रे, मासिके, विशिष्ट नियतकालिके (प्रसिद्ध फलक, विजेच्या पाट्या, इत्यादी) परिवहन जाहिरात, प्रसिद्धी पट, आकाशवाणी, दूरचित्रवाणी, गवाक्षशोभन (विडो डिस्प्ले) ह्यातील कोणकोणती माध्यमे दृक्-श्राव्य माध्यमांमध्ये मोडतात, त्याबद्दलची निरीक्षणे नोंदविली आहेत. या अगोदर वृत्तपत्राबद्दल

काही निरीक्षणे मांडली आहेत. उदा. भारतामध्ये लोकसंख्येच्या 6 ते 7 टक्के लोक वृत्तपत्र वाचतात. तरीही भारतामध्ये वृत्तपत्र हे प्रसारमाध्यमांसाठी महत्त्वाचे साधन मानले जाते. समाजातील सर्व घडामोडीचा तत्काळ संदेश वृत्तपत्रे देत असतात. वृत्तपत्रानंतर आपण मासिकांचा विचार केल्यास तर असे जाणवते की वृत्तपत्रे घाइघाईत वाचली जातात. तर नियतकालिके फुरसतीव्य वेळेत वाचले जातात.

वरील निर्देशामध्ये आपणास जाणवते की, माध्यमामध्ये ध्वनी समाविष्ट केल्याबद्दल त्यांच्या अभिव्यक्त वेगळा बदल होतो.

दूरचित्रवाणी

हे एक दृक्श्राव्य माध्यम आहे. यातून अनेक उपप्रकार निर्माण झाले. उदा. चित्रपट, मालिका, नाट्य, शॉर्ट फिल्म, इत्यादी. या अगोदर नभोवाणी घराघरांतून विस्तारित होती. मात्र यातून फक्त ध्वनिफित प्रसारित होत होत्या. त्यानंतर दूरचित्रवाणीमधून ध्वनीफित सोबत दृश्य सादर होत होते.

भाषेच्या अंगाने विचार केल्यास आजच्या विद्यार्थ्यांना एक नवे दालन या तंत्रज्ञानामुळे उपलब्ध झाले. याच्या विस्ताराने नंतर चित्रपट, पटकथा, शॉर्ट फिल्म, नाटकांतून वास्तववादी प्रश्न हुबेहुब होऊ लागले. याचा आस्वाद घेणारा प्रेक्षक निरक्षर असलाही तरी प्रस्तुत कथानकातील आशय त्यांच्यापर्यंत पोहचतो जेव्हा हा आशय दिग्दर्शकाजवळ सादर केला जातो. तेव्हा ते कथानक एक ओळीत सांगावे लागते. त्या कथानकाला आपण पटकथा म्हणतो. त्यांचे लहान रूप आपणास मराठी मालिकांमधून पहायला मिळते.

दूरचित्रवाणीव्या सहाय्याने समाजप्रबोधनाचे अनेक उपक्रम राबविले जातात. ह्यामधून आपले विचार समाजापर्यंत पोहचून त्यांमध्ये संस्कृतीवर संवर्धनाचे मूल्य जोपासने दूरचित्रवाणीचा प्रसार

प्रचार करताना विविधांगी दृष्टिकोण डोळ्यांसमोर होता. त्याच भूमिकेतून या माध्यमांकडे प्रकर्षाने पाहिले जात होते. ह्यामध्ये माध्यमिक आणि उच्च माध्यमिक परीक्षेच्या अभ्याक्रमासाठी काही मालिका देखिल सादर केल्या जात होत्या. आपली संस्कृति करण्यासाठी कला, मूल्यांचा जागर करण्यासाठी साहित्य-कला मूल्याचा वापर करून संस्कृति संवर्धनाचे मोलाचे काम्रय गेल्या गेले.

निष्कर्ष

माहिती तंत्रज्ञानाच्या युगामध्ये दृक्श्राव्य माध्यम आपणास रोजगार निर्माण करू शकतो. पटकथा लेखक ह्या मधून तयार होऊ शकतात.

संदर्भग्रन्थसूची

1. कालेलकर ना. गो., भाषा आणि संस्कृति, मौज प्रकाशन, मुंबई, 1962, प्रथमावृत्ती.
2. खैरे विश्वनाथ, मराठी भाषेचे मूळ, मराठी संशोधन मंडळ, मुंबई, 1979.
3. गजेंद्र गडकर श्री न भाषा आणि भाषाशास्त्र व्हीनस प्रकाशन, द्वितीय आवृत्ती, पुणे, 1979.
4. वाङ्मयीन संज्ञा संकल्पना कोश संपादक प्रभा गणोरकर व इतर, भटकळ प्रकाशन, प्रथमावृत्ती, डिसेंबर 2001.

संविदाध्यापिका (मराठी)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
विद्याविहार, (पूर्व) मुम्बई - ७७

★★★

वर्चस्व की संस्कृति का प्रतिपक्ष रचता कवि : कबीर

प्रा. दिनेश पाठक

आज से लगभग 6 दशक पूर्व हुए कबीर पर विचार करते हुए मुझे हमेशा यह लगता है कि कबीर जैसे आस-पास ही किन्हीं अन्य रूपों में बोल रहे है । विविध प्रसंगो, मंचों, संगोष्ठीयों में प्रतिबद्ध व मानवीय चिंतन के प्रति ईमानदार लोगों को बोलते हुए सुनते समय यह आभास होता है कि जैसे कबीर ही रूप बदल कर बोल रहे हों । सोचता हूँ कि ऐसा क्यों होता है ? आपने स्वभाव व सोचने के ढंग पर विचार करता हूँ तो पाता हूँ कि ऐसा इसलिए हो रहा है कि कबीर आज की स्थितियों में और भी प्रासंगिक हो उठे है । कबीर के समय की समस्याए भी ज्यादा मजबूत होकर, रूप बदलकर आज के समय में और भी घनी हो चुकी है । किन्तु उनका प्रतिरोध करनेवाला स्वर दिनों-दिन कमजोर होता जा रहा हैं । सामाजिक, राजनोतिक और आर्थिक जीवन की चुनौतियाँ विविध और उनका पोषण करनेवाली वर्चस्ववादी संस्कृति के तेवर और संसाधनों पर उनके अधिपत्य को देखते हुए कबीर और उनका आत्मसंघर्ष बेतरह याद आता है। कबीर को देखने को जो परंपरावादी नजरिया है, वह है कि, उन्हें एक संत कवि के रूप में देखा जाता रहा है । कवि के रूप में हिन्दी जगत ने कबीर को अपनाया है यद्यपि आज भी हिन्दी बौद्धिकों का एक वर्ग उन्हें उस तरह से कवि नहीं मानता जिस तरह से माल्लिक मुह मद जायसी, तुलसी व सूर को स्वीकार करता है । बकौल आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर की कविता 'फोकट का मास' है ।

बहरहाल इस सारे के बीच जो सबसे ज्यादा अहम चीज है और जो प्राय: जाती है वह है कि कबीर एक लम्बी दूरी तक विचार करनेवाला सामाजिक चिंतन है और उनका चिन्तन सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक शक्तियों में वर्चस्व के विरूद्ध एक अत्यंत ईमानदार प्रतिपक्ष रचता है । कबीर अपने समय की लगभग सभी अतिवादी व्यवस्थाओं पर विचार करते हैं और उनकी विसंगतियों पर प्रहार करते हैं । यह प्रहार निर्भीक और बेलौस होता था जो एक भयंकर झन्नाटेदार थप्पड़ की तरह प्रतिगामी शक्तियों के मुँह पर पड़ता था और लम्बे समय तक तिलमिलाहट पैदा करता था । आज भी वे उनके पद प्रतिगामी सोच को मानते व उसे व्यवहार में लानेवाले लोगों के मुँह पर उतने ही जोरदार तरीके से पड़ते है । यह बात अलग है कि, अब उन्हें कहने के लिए कबीर प्रत्यक्ष नहीं है । धार्मिक पाखंड, ब्राह्मण व मुल्लावाद, वर्चस्व, सत्ता की अराजकता व उनके जुल्म लाभकेन्द्रित अमानुषिक सोच व व्यवहार रखनेवाला सदरखोर व व्यापारी वर्ग धर्म के नाम पर धार्मिक व्यक्ति का चोला पहने हुए पाखंडी लोग, सभी पर कबीर बडी पैनी नजर रखते हैं और उनकी चाबुक सभी पर पडती है । कबीर अपने समय की ब्राह्मणवादी व मुल्लावादी व्यवस्था को चुनौती देते हुए कहते हैं

जो तू बांभन बंभनी जाया
तो आन बाट हवै क्यो न आया ।
जे तू तुरक तुरकनी जाया
तौ भीवरि रवतनां क्यों न कराया ।

(ग्रन्थावली, दास पद ४१ पृष्ठ ७९)

कबीर की यह पंक्तियाँ साधारण नहीं हैं, न तब भी और न आज हैं यें पंक्तियाँ नहीं हैं, आग हैं जो वर्चस्व की संस्कृति की समिधा तैयार करती हैं । आज वे लोग तांत्रिक समय और

समाज में भी ये पंक्तियाँ प्राय: तथाकथित बौद्धिक समाज द्वारा उपेक्षित की जाती हैं कल्पना कीजिए कबीर के समय की और काशी जैसे नगर की जहाँ ये पंक्तियाँ कही गईं । ब्राह्मण संस्कृति के गढ़ में व मुस्लिम शासक की सत्ता में इन पंक्तियों को चिल्ला-चिल्लाकर खुले आम जनता में रखना वर्चस्व की संस्कृति से सीधे सीधे टकराना नहीं तो और क्या था ? हिन्दी ही नहीं बल्कि समकालीन भारतीय साहित्य में भी इस साहस और पौरुष का दूसरा कवि चिंतन हमें नहीं मिलता । आज भी भारतीय समाज में कुलीनतावादी विचारों आब्रह्मे व सत्ता का वर्चस्व अनेक रूपों में बना हुआ है और कुछ सन्दर्भों में यह और भी ज्यादा मजबूत और अमानवीय हुआ ह । कबीर ने जिन सामाजिक कुप्रवृत्तियों व वर्चस्ववादी संस्कृति पर प्रहार किया गया था वे प्रवृत्तियाँ और वह वर्चस्ववादी संस्कृति आज और भी शक्तिशाली होकर उभर रहीं है । कबीर ब्राह्मणवादी संस्कृति के साथ-साथ कर्मकांडी संस्कृति पर भी प्रहार करते हैं । कबीर तथाकथित संतों के चरित्र पर प्रहार करते हुए कहते हैं -

ज्ञानी ध्यानी सांजमी दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोई एक ॥

कबीर अपने आस-पास बुरी तरह फैले हुए संत समाज के वास्तविक चरित्र से परिचित थे इसीलिए वे कहते हैं कि ज्ञानी, ध्यानी, जपी, तपी, संयमी, दाता, सूर तो अनेक है किन्तु शीलवान व चरित्रवान व्यक्ति कोई एक बिरला ही मिलता है । धर्म व धार्मिक आचरण को पाखंडीपूर्वक ओढे हुए लोगों का सही अर्थ में धार्मिक व्यक्ति नहीं माना जा सकता । ऐसे में 'सीलवंत' मिलना तो अत्यंत दुर्लभ है । चरित्र को महत्त्व देते हुए आर तथा कथित धार्मिक व्यक्तियों के पाखंड को उघाडते हुए कहते है -

अरे इन दौडन राह न पाई ।

हिन्दू अपनी करै बडाई छुवन न देई ॥
बेश्या के पामन तर सोतै यह देखो हिन्दू भाई ।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगा-मुरगी खाई ॥

इस प्रकार कबीर अपने समय व समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करते हैं और हिन्दू व मुस्लिम समाज के धार्मिक या तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों के वास्तविक चरित्र का उद्‌घाटन करते है । कबीर अपने समाज के सामाजिक, धार्मिक व्यवस्थाओं के प्रति जितने जागरूक थे वे अपने समाज के आर्थिक अवस्था को लेकर भी उतने ही जागरूक थे । अपने समाज की गरीबी व गरीबों की स्थितियों को लेकर कहते है -

दीन लखे मुख सबन को दीनहि लखै न कोय ।
भली बिचारी दीनता नरहुँ देवता होय ॥

अर्थात दीन व्यक्ति सभी का मुँह देखता रहता है उसका मुँह कोई नहीं देखता । इसी दीनता के कारण दीन व्यक्ति के लिए साधारण नर भी देवता हो जाते हैं । गरीब बेचारे को अपनी जरूरत की पूर्ति के लिए सभी का मुँह देखना पड़ता है, जो भी कोई उसकी वह जरूरत पूरी करने की क्षमता रखता है । वह उसके लिए देवता बन जाता है । वस्तुत: इस दोहे का जो सामान्य अर्थ है उसके भोतर जाने की जरूरत है और यह देखना समीचीन होगा कि यह पद अपने वाच्यार्थ से इतर भी अन्य अर्थों की ओर संकेत करता है । इस दोहे से अस बात का भी सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीर का समाज गरीबी में डूबा हुआ था । गरीबी का स्तर ऐसा रहा होगा कि अधिसंख्य निम्न वर्ग गरीबी का शिकार था और अपनी छोटी-मोटी जरूरतों की पूर्ति के लिए समाज के ऊँचे वर्ग के प्रभुओं की कृपा का मोहताज था । कबीर इस निम्न वर्ग के गरीबों के पैरोकर थे । इसकी दुर्दशा,

लाचारी व इसकी दीनता व असहायता से वे परिचित थे और इसी समाज की पैरोकारी करते हुए वे कहते है –

दुरबल को न सताइए जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव को स्वाँस से लौह भसम ह्वै जाय ॥

कबीर का यह पद दो बातों की तरफ संकेत करता है । पहली बात यह की हर तरह से लाचार व कमजोर तबके को हर कोई सता रहा है, खासकर समाज का उच्चवर्ग किन्तु दूसरी बात जिसकी तरफ कबीर के संकेत को और भी समझे जाने की जरूरत है वह यह कि इस वर्ग का यदि शोषण जारी रहा तो यह वर्ग प्रतिशोध के लिए मजबूर हो जाएगा और अपने नष्ट होने की स्थिति में वह समाज के इस उच्च व शक्ति संपन्न वर्ग को भी नहीं बख्शेगा । वरिष्ठ चिंतक खगेन्द्र ठाकुर इस दोहे के अर्थ की व्याख्या करते हुए कहते है- 'यहाँ एक तरफ 'दुरबल' के प्रति सहानुभूति की माँग करते हैं, तो दूसरी तरफ उसकी ताकत का ज्ञान करा रहे हैं । इस प्रकार कबीर दुर्बल और गरीबों के पक्षधर और समानता के लिए संघर्ष करनेवाला के रूप में सामने आते है।'

कबीर अपने समय के 'बनियाकर्म' से भी वाकिफ थे और उसके चरित्र के असली रूप से भी परिचित थे । बनिया और सूदखोर समाज के आतंक से भी कबीर का समाज जरूर आक्रांत रहा होगा, इसीलिए वे अपने एक पद में बनियाकर्म को व्यापक अर्थो में रखते हुए बनिया कर्म के रूपक को रखते हैं और उसके माध्यम से वे सूदखोर व बनियाकर्म की सामाजिक सच्चाई को बयान करते है –

मन बनियाँ बनिज न छोडै ।
जनम-जनम का मारा बनियाँ अजहू पूर न तौलें ।
पासँग के अधिकारी लैले, भूला-भूला डोलै ।
घर में दुविधा कुमति बनी है, पल पल में चित तोरै।

कुनबा वाके सकल हरामी, अमृत के विष घोलै ।[2]

कबीर का यह पद एक तरह से मन के व्यावसायिक तोल-मोल लाभ-हानि की बुद्धि की ओर संकेत करता है तो वहीं दूसरी तरफ वह बनिया कर्म की सच्चाई व उसके केवल और केवल लाभ केन्द्रित चरित्र का भी पर्दाफाश करता है । आज के समय व समाज में यह सच्चाई और भी नग्न रूप में हमें देखने को मिल रही है । वर्चस्ववादी शक्तियों ने पूरे समाज को बाजार बना दिया है और बाजार की शक्तियों का कुनबा अलग अलग रूप-रंग धारण कर जनता को बुरी तरह लूट रहा है । राजसत्ता या तो इस लूट में अपना हिस्सा पाकर आनंद मंगल मना रही है अथवा वह स्वयं बाजार की बडी ताकतों के सामने लाचार है । जनता का सारेआम शोषण हो रहा है, लेकिन मजाल किसी की जो बोल दे, रोकना-टोकना तो बहुत दूर की बात है । बहुत सारे बौद्धिक या तो सत्ता के क्रीतदास हैं या बनने की कतार मं लगे हुए हैं । आधुनिक शिक्षा-दीक्षा और लोकतंत्र जैसी सबसे ज्यादा जनकेन्द्रित व्यवस्था में भी कबीर जैसा साहस व तलगामी दृष्टि भारतीय सन्दर्भ में कितने बौद्धिकों के पास है ? वर्चस्व की संस्कृति का दिन व दिन हावी होते जाना इस बात का स्पष्ट सूचक है कि, तर्क विवेक व सहिष्णुता का लोप हमारे समान से होता जा रहा है । वरिष्ठ आलोचक प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल इसी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'कबीर की साधना का मूल आधार है, यह अन्तर्दृष्टि कि धर्मसत्ता ने मनुष्य के सहज स्वभाव को ही विकृत कर दिया है । उसे अपने आत्मसार से ही विच्छिन्न कर दिया है । विवेक के आग्रह और पावनता की ललक को उनके सहज, परस्पर पूरक रूप में रहने देने की बजाए एक दूसरे का विरोधी ठहरा दिया है । मनुष्य की आत्मसत्ता की समग्रता को पक्ष-विपक्ष में बाट दिया है । दुर्भाग्य यह है कि इस

मूलभूत विभाजन, इस त्रासद विच्छिन्नता पर लोग विचार तक नहीं करना चाहते ।[13] इस प्रकार प्रो. पुरूषोत्तम अग्रवाल का विवेचन आज के बुद्धिजीवियों, चिन्तकों के बरक्स कबीर के चिंतक पक्ष को अधिक स्पष्टता से हमारे सामने रखता है ।

कबीर सांस्कृतिक वर्चस्व के एक और रुप पर प्रहार करते हैं, ऐसा नहीं था कि कबीर इस खरेपन और आक्रामकता के बावजूद निरापद रहे हों, उस समय के वर्चस्ववादी समाज ने कबीर को प्रारंभ से लेकर अंत तक नहीं स्वीकारा । यह बात अलग थी कि समाज का शोषित तबका धीरे-धीरे उनसे जुडता गया और उनके पीछे एक प्रचण्ड लोकशक्ति केन्द्रित होती गई । कबीर सहजता से स्वीकारे नहीं गये । स्वयं कबीर की पंक्ति का उदाहरण दृष्टव्य है-

साधो जग बौराना

साँच कहो तो मारन धावै झूठै जग पतियाना ॥

कबीर का यह पद उनकी अपनी स्थिति की ओर भी संकेत करता है । सच कहने और उस पर चलने की एवज में कबीर को कितने लात-घूँसे खाने पड़े होंगे, कितनी गालियाँ सुननी पड़ी होंगी, कहाँ-कहाँ और किन किन स्थितियों से गुजरना पड़ा होगा? संभवत यह कबीर ही बता पायेंगे । किंतु, बावजूद इस सब के कबीर जीवन भर विवेक सम्मत व तर्क आधारित जीवन जीते रहे और वर्चस्ववादी संस्कृति के विरोध में एक शक्तिशाली प्रतिपक्ष रचते रहे । यह प्रमाण है कि, वे प्रारम्भ से लेकर अंत तक एक प्रखर समाजचेता चिंतक ये, जो सत्य व मनुष्यता के पक्ष में सब कुछ गवाँ कर भी खड़े होने का साहस रखते थे । सही मायने में यही एक क्रियाशील बौद्धिक का सबसे अनिवार्य गुण है। इस सब में कविता तो एक सहज अंत:प्रक्रिया के तहत अपने आप उनके विचारों को लेकर स्वाभाविक रूप से कल-कल

छल-छल करती बहती और कविता तत्कालीन जनजीवन के भावपक्ष से सरलता से जुडती गई तथा कबीर के कवि रूप को लोगों ने अपने जेहन में नक्श कर लिया किन्तु इस सब में उनका वास्तविक 'चिन्तन' कला रूप दबता गया । अनदेखा हो गया । जरूरत इस पक्ष को जानने की है ।

सन्दर्भ

1. कबीरदास: विविध आयाम, पृ. 80-81, संपादक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ।
2. कबीर, पृ. 268, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
3. अकथ कहानी प्रेम की, पृ. सं. 335, पुरूषोत्तम अग्रवाल ।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस्. आई. ई. एस्.
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय
मुम्बई - ४०० ०२२

★★★

Effect of Yoga and Physical Education on Human Health

Ramachandra H.D

HEALTH

As defined by World Health Organization (WHO), it is a "State of complete physical, mental, and social well being, and not merely the absence of disease or infirmity." Health is a dynamic condition resulting from a body's constant adjustment and adaptation in response to stresses and changes in the environment for maintaining an inner equilibrium called homeostasis.

SUPPLEMENTARY COMPONENTS OF FITNESS

The secondary components of fitness (also known as the components of performance based fitness) are involved in all physical activity and are necessary for daily functioning. Athletes experience different levels of success depending on how well these secondary fitness components are developed. Although the primary components of fitness are thought to be the most important, we should not ignore the secondary components because of their importance in the completion of daily tasks. The secondary components include the following.

- Balance is the ability to maintain a specific body position in either a stationary or dynamic (moving) situation.
- Coordination is the ability to use all body parts together to produce smooth and fluid motion.
- Agility is the ability to change direction quickly.
- Reaction time is the time required to respond to a specific stimulus.
- Speed is the ability to move rapidly. Speed is also known as velocity (rate of motion).
- Power is the product of strength and speed. Power is also known as explosive strength.

- Mental capability is the ability to concentrate during exercise to improve training effects as well as the ability to relax and enjoy the psychological benefits of activity (endorphins).

HEALTH AND WELLNESS

Health is a dynamic process because it is always changing. We all have times of good health, times of sickness, and maybe even times of serious illness. As our lifestyles change, so does our level of health. Those who participate in regular physical activity do so partly to improve the current and future level of our health. We strive toward an optimal state of well-being. As our lifestyle improves, our health also improves and we experience less disease and sickness.

HEALTH EDUCATION MEANING

Health education is concerned with promoting health as well as reducing behaviour induced diseases. In other words health education is concerned with establishing or inducing changes in personal and group attitudes and behaviour that promote healthier living. "Health Education like general education is concerned with changes in knowledge, feelings and behaviour of people. In its most usual forms it concentrates on developing such health practices as are believed to bring about the best possible state of well being".

OBJECTIVES OF HEALTH EDUCATION

1. To develop a scientific point of view of health with reference to traditional and modern concept of health.
2. To identify health problems and understand their own role on health and to medical agencies in meeting those problems.
3. To take interest in current events related to health.
4. To arrive at suitable conclusions, based on scientific knowledge, and take action as an individual, member of the family and community protecting, maintaining and promoting individual and community health.

5. To set an example of desirable / health behaviour.
6. To understand the causes of the pollution of air, water soil and food as well as their ways and means of prevention.
7. To gain sufficient knowledge of First-Aid.
8. To provide desirable knowledge about marriage sex and family planning.
9. Help to understand the importance of physical training sports, games, yogic exercises as well as their relationship with health education programme.
10. To emphasize bad effects of smoking and taking alcohol etc.

IMPORTANCE OF HEALTH EDUCATION

1. It provides information about the function of the body. The rule of health and hygiene and precautionary measures for keeping of diseases.
2. Discovering physical defects / of children and discovering various types of abnormalities of children.
3. Develop habits like need of fresh / air, hygienic feeding and various class.
4. Provides knowledge regarding good health habits
5. Develops better human relations between school, home and community.
6. Provides knowledge regarding prevention and control of various diseases.

YOGA

YOGA INTRODUCTION

Yoga is a way of a better living. It ensures great or efficiency in work, and a better control over mind and emotions. Through yoga one can achieve both physical and mental harmony. Health is the greatest blessing of all. Health is not just the absence of disease. To enable the individuals to lead a life of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease or infirmity. Physical Education may prosvide the right direction and needed actions to improve the health of members of any community, society, nation and the world

as a whole. An educational system encompassing the mental, emotional, social and physical dimensions of health becomes imperative to bring about all around development in children.

YOGA MEANING

Yoga is the movement of the body through different positions, postures, and poses.

YOGA DEFINITION

In Mahabharata, Lord Krishna describes yoga as “Yoga is skill in actions.". The Yoga may also define as "Yoga is the way or method through which internal and external facilities of man meets in totality and changes occur and by which may achieve God or feel his existence and may become the part of Him.”

The need of yoga is control over the mind. A man who cannot control his mind will find it difficult to attain divine communion, but the self-controlled man can attain it if he tries hard and directs his energy by the right means. The main aim of yoga is integrating the body, mind, and thoughts so as to work for good ends. Modern life style leads to diseases, which are mostly due to poor food habits, heavy daily routines and to air and water pollution in turn easily affect the human body. The main objectives of the Yogic practices are to make one free from diseases, ignorance, egoism, miseries the affiliations of old age, and fear of death etc.

Yoga teachers insist that two quarter of the stomach volume alone should be filled with food, one quarter with water and the remaining quarter should be kept empty Benefits of Yoga are

1. It develops the physical stability.
2. It keeps a person young.
3. It Strengthens the hamstring, calf, and back muscles.
4. It relieves the stiffness of joint, particularly at knee, hip and ankle.
5. It removes excess fat in the abdominal region
6. It gives more flexibility to the vertebral column
7. It is extremely beneficial to the spinal column.

8. It will enlarge the thoracic cavity.
9. It strengthens the back and abdomen muscles.
10. It helps to make the maximum range of movements in all directions in the hip joint.
11. It develops the balancing power in the body.
12. It loosens the spinal column.
13. It reduces the excess fat in the sideways.
14. It strengthens the ankles and tones the muscles of the legs.
15. It promotes the spinal bone growth

ASANAS (Postures)

Asnana means holding the body in a particular posture to bring stability to the body and poises to the mind. The Practice of asana brings firmness to the body and vitality to the body and mind. The people of ancient Greece believed in the principle. „A sound mind in a sound body„.

By practicing asana one frees himself from physical disabilities and mental distractions. It is a state of complete equilibrium of body, mind and spirit asanas may be of the following types

- Meditative Asanas
- Relaxation Asanas
- Cultural Asanas

DIFFERENT ASANAS

Asanas are very useful and important from the view point of physical, mental and spiritual growth of an individual. Methods of Doing Asanas

1. Sitting posture
2. Standing posture
3. Lying posture - Supine, Prone

PHYSICAL EDUCATION

MEANING

The word "Physical Education" comprises of two separate words. “Physical” and “Education”. The plain dictionary meaning of word physical as “relating to body”, which may mean any one or all body characteristics of a person such as physical strength, physical endurance, physical fitness, physical appearance or physical health.

The word „education" may mean "the systematic instructions or training or preparation for some particular task". Therefore "Physical Education is an education of and through human movement where many of the educational objectives are achieved by means of big muscle activities involving sport, games, gymnastics, dance, and exercises".

OBJECTIVES

1. To Develop Organic Fitness and Mental health.
2. Social and personality Development.
3. Development of Desirable Habits.

BENEFITS OF PHYSICAL ACTIVITY

As fitness professionals, we spend a great deal of time inspiring and assisting others in their pursuit of improved health. Education is an important aspect of this. We must promote the benefits of regular activity and help people understand why they should be active.

SCOPE OF PHYSICAL EDUCATION

1. Corrective Exercises: Corrective exercises help to remove the deformities in the body of a child. Sometimes these defects are there because of defects in muscle development. We use light corrective exercises.
2. Games and Sports: Various team games like hockey, football, cricket, basketball and volley ball etc, and individual events like athletics, wrestling, boxing judo and archery are included in the programmers of physical education. Swimming, diving, canoeing etc. are related to water sports.
3. Rythmics : Gymnastics, Leziums, Dance, Mass physical training and Dumb bell etc. are rhythmical activities necessary for rhythm and balance Rhythmical activities are also included in the progrmmes of physical education.
4. Self defence activities: Hiking, Trekking, judo, karate and self defence activities are included in the programmes of physical education.
5. Recreational Activities: Recreational activities like minor games, chess, carom, horse riding, education

camps, hunting, folk dance, fishing etc. are included in the programmes of physical education.

6. Yogic activities: Yogic activities such as Asanas, Pranayama, kriyas etc. are included in physical education.

CONCLUSION

Most people are in opinion that yoga refers to performing exercises to keep the body fit and trim. But it is more than that. The systematic yogic practices not only eliminate and control several diseases but also keep the mind perfect, clean and peaceful. That means the yogic practice gives both physical and mental perfection.

Physical Education Instructor
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Rajiv Gandhi Campus, Sringeri
Karnataka – 577 139

★★★

शारीरिक शिक्षणात आरोग्याचे महत्त्व

श्री. शंकर बाबुराव आंधळे
मार्गदर्शक - डॉ. गोमचाळे एम्. एस्.

आज रूढ झालेला 'आरोग्य शिक्षण' हा शब्द प्रयोग 1918 मध्ये स्थापन झालेल्या अमेरिकन बाल आरोग्य मंडळाने प्रथम प्रचारात आणला. महायुद्धाच्या वेळी अनेक अमेरिकन तरूण लष्करात भरती होण्यास अपात्र ठरले. तेव्हा त्यांनी असा निष्कर्ष काढला कि, या शारीरिक दुर्बलतेचे, अपात्रतेचे कारण म्हणजे शाळेतून मिळणारे अपुरे आरोग्य शिक्षण होय.

आरोग्य हा सुखी जीवनाचा पाया आहे. प्रत्येक व्यक्तीला स्वत:च्या विकासासाठी सुदृढ शरीराची व निकोप मनाची गरज असते. अगदी प्राचीन काळापासून मानवाला सुदृढ व निकोप शरीराचे महत्त्व कळले आहे.

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् -कुमारसंभव

आरोग्य हा प्रत्येक व्यक्तीचा जन्मसिद्ध हक्क आहे. पण त्याच बरोबर त्याला कर्तव्याचीही दुसरी बाजू आहे. हे आरोग्य संपादन करण्यासाठी व्यक्तीला व समाजाला जागरूक राहणे आवश्यक आहे, याची जाणीव आरोग्यशिक्षणातून करून देण्याचा हा प्रयत्न आहे.

जागतिक आरोग्य संघटनेने केलेल्या (WHO) आरोग्याच्या व्याख्येतच फक्त आजाराचा अभाव अशी कल्पना नसून संपूर्ण स्वास्थ्याचा समावेश आहे. यात शारीरिक, मानसिक, भावनिक, स्वास्थ्याचाही समावेश आहे. आरोग्य शिक्षणातील प्राथमिक ज्ञान प्रत्येकाला माहित आहेच पण त्यांना या ज्ञानाचे उपयोजन करण्यास

शिकवणे, जीवन जगताना या ज्ञानाचा प्रभावीपणे उपयोग करण्यास शिकवणे, हे आरोग्यशिक्षणानेच साध्य होईल.

If wealth is lost
Something is lost
But if health is lost
Everything is lost

आपल्या मनात आरोग्य म्हणजे 'केवळ रोगापासून मुक्तता' असाच अर्थ उत्पन्न होतो. पण या आरोग्याचे शरीराबरोबरच आणखी काही घटक आहेत. निरोगी राहणे हा माणसाचा जन्मसिद्ध हक्क आहे व नैसर्गिक रित्या निरोगी राहण्यासाठी त्याला स्वत:च्या परिसरावरही अवलंबून रहावे लागते. उदा. शुद्ध हवा, शुद्ध पाणी, भरपूर सूर्यप्रकाश, स्वच्छता म्हणजेच आरोग्य, हे शरीर व परिसर या दोन घटकांवर अवलंबून आहे. तिसरा एक घटकही या आरोग्यावर परिणाम करतो तो म्हणजे माणसाचे मन.

आरोग्य ही एक सतत चालणारी प्रक्रिया आहे. आरोग्य म्हणजे क्रिया-प्रतिक्रिया (Action-Reaction) नव्हे. आज व्यायाम केला लगेच आरोग्य सुधारले किंवा थोडा काळ योग्य आहार घेतला, व्यायाम केला तर आयुष्याची, आरोग्याची शिदोरी मिळाली असे नाही. आरोग्य हे दैनंदिन क्रियांद्वारा मिळत असते. आहार, विहार, विश्रांती, योग्य मनोरंजन, उत्तम परिसर यातून आरोग्य मिळत राहते आणि ही परिस्थिती कायमच असली पाहीजे, म्हणून आरोग्य ही एक प्रक्रिया (Process) आहे असे म्हटले जाते.

आरोग्याचो दृश्य लक्षणे

1. वजन, उंची-वयानुरूप योग्य असणे.
2. अस्थिसंस्थेचा योग्य विकास झालेला असणे.
3. शरीर धारणा (Posture) योग्य असणे.

4. डोळे चमकदार असणे, मंद डोळे, डोळयांखाली काळी वर्तुळे, निस्तेज त्वचा नसणे.
5. स्नायू संस्थेचा योग्य विकास झाल्याने शरीर सुडौल असणे.

आरोग्याची अप्रत्यक्ष लक्षणे

1. शरीरांतर्गत संस्थांचे कार्य उदा. पचन, रूधिराभिसरण, इत्यादी योग्य प्रकारे चालू असणे.
2. मानसिक समतोला असणे.
3. दैनंदिन जीवन समाधानाचे व कार्यक्षमतेने व्यतीत करता येणे.

आरोग्याचे पैलू/आरोग्याचे प्रकार

1. शारीरिक आरोग्य
2. मानसिक आरोग्य
3. सामाजिक आरोग्य
4. अध्यात्मिक, आत्मिक आरोग्य
5. भावनिक आरोग्य
6. व्यवसाय आरोग्य
7. इतर उदा. तत्त्वज्ञानात्मक, परिस्थिति, आहार, प्रतिबंधात्मक इत्यादी

आरोग्य हे सापेक्ष आहे. प्रत्येक व्यक्तिसाठी आरोग्याचे निकष व परिणाम भिन्न असू शकतात. म्हणून आरोग्याची तुलना स्वत: स्वत:शीच करावी. समाजाचे व व्यक्तीचे आरोग्य सुधारण्याचा खरा मार्ग म्हणजेच आरोग्य शिक्षणच आहे. या मार्गान होणारी सुधारणा हळूहळू होते, पण निश्चित, विधायक स्वरूपात व कायमची प्रभावी अशी होते म्हणून हा मार्गच योग्य मानला जातो.

भारतातील आरोग्य समस्या

भारतातील आरोग्याच्या समस्यांचे मूळ लोकसंख्या, दारिद्रय, अज्ञान, आळस, बेजबाबदारपणा, बेकारी यामध्ये आढळते.

अ) सांसर्गिक रोगांच्या समस्या

1. हवा - एन्फलुएझा, घटसर्प
2. खाद्य, पेय - कॉलरा, टायफाइड
3. कीटक दंश - मलेरिया, प्लेग
4. प्रत्यक्ष संपर्क - गर्मी, एड्स

हिवताप, प्लेग, नारू, गोवर, कांजिण्या, घटसर्प, देवी, इत्यादी सांसर्गिक रोग.

ब) पोषणाच्या समस्या

अन्नातील पिष्टमय पदार्थ व साखर, स्निग्ध पदार्थ, खनिज पदार्थ, जीवनसत्त्व, प्रथिने या सर्वांना मिळून पोषक अन्न म्हणतात.

अज्ञान, दारिद्रय, बेजबाबदारपणा, आळस, वेळेचा अभाव.

क) पर्यावरण स्वच्छतेच्या समस्या

शाळेचा, गावाचा, धरणाचा, आसपासचा परिसर अशा विविध संदर्भात आपण परिसराचा विचार करतो.

भूप्रदूषण, जलावरणाचे प्रदूषण, वायूप्रदूषण इत्यादी

ड) वैद्यकीय सेवेच्या समस्या

इ) लोकसंख्या समस्या

ब-याच जणांना वाटतं कि, जोपर्यत आपल्याला काही होत नाही तोपर्यंत आपण तंदुरस्त आहोत. इतरांना वाटतं की, शरीर कमावणं म्हणजे तंदुरूस्त असणं. आणखी इतरानां वाटतं की आपल्या लॅबोरेटरीत जाऊन केलेल्या सर्व तपासण्या नॉर्मल येतात म्हणजे आपण तंदुरूस्त आहोत. यातून ज्याला जे वाटतं तेच तो खरं समजून चालतो. शरीराविषयी शास्त्रीय माहिती मिळालेली

नव्हती, तोपर्यंत हे विविध अर्थ तंदुरूस्तीच्या संदर्भात ग्राह्य धरले जात.

1. आयुर्वेद वात, कफ, पित्त यांच्या समतोलावर भरवसा ठेवतात.
2. ॲलोपॅथीवाले रक्त तपासणीवर जास्त भर देतात.
3. होमियोपॅथीमध्ये अनेक बारीकसारीक प्रश्न विचारून रोग्याच्या शारीरिक व मानसिक आरोग्याचा अंदाज घेतला जातो.

आणखीही अशा ब-याच उपचार पद्धती आहेत की, त्या आपापल्या परीने तंदुरूस्तीचा अर्थ लावतात. हे सर्व अर्थ आपापल्या परीने काही अंशी बरोबरही आहेत.

बदलत्या जीवनपद्धतीनुसार विचार करता आता आपल्याला तंदुरूस्ती किंव संपूर्ण आरोग्याचा विचार करायला हवा. यात केवळ तनाचा किंवा मनाचा विचार करून चालणार नाही तर शरीरात असणा-या एकूण एक अंतर्गत यंत्रणांचा विचार आरोग्याच्या संदर्भात करणं आवश्यक आहे. शास्त्रीय उपकरणांच्या साहाय्याने शास्त्रज्ञांनी घेतलेला शरीरातील यंत्रणांचा मागोवा, पाश्चात्यांची संशोधन वृत्ती, त्यांच्याकडे असणारे पैशाचे पाठबळ यांच्या साहाय्याने केलेल्या अशा या संशोधनांमुळे शरीरशास्त्र आणि शरीरात असणा-या रसायनांचे शास्त्र या दोन महत्वाच्या शास्त्रांचा चेहरामोहराच बदलून गेला आहे.

निसर्गात असणा-या सुसूत्र वातावरणाची लक्षणं आपल्याला नेमेची येणा-या सर्व ऋतुमानात दिसतात. हे ऋतुमानाचं सुरळीत चालणारं चक्र आज आपल्याला भरकटलेले दिसत आहे. (उदा. तापमान वाढ, पाऊस कमी-जास्त इ.) ते त्यातील जाणवणा-या अनिष्ट लक्षणांवरून. त्यामुळे हळूहळू उडणा-या हाहाकाराची झळ आपणा सर्वांनाच लागत आहे. पण अजूनही

माणूस त्याविषयी पूर्णपणे जागा झालेला आहे, असे वाटत नाही. तीच गत किंवा स्थिती माणसाच्या वैयक्तिक स्तरावरही असलेली दिसते.

1. **पचनसंस्थे संबंधी**- भूक, शौचाची तक्रार, गॅस, ॲसिडिटी, तोंड येणे, तोंडाला कोरड पडणे, पित्त, मायग्रेन इत्यादी
2. **रक्ताभिसरण संबंधी**- बी. पी., कोलेस्टोरॉल, ट्रायग्लायसराईड, क्लॉट, ॲनेमिया, पायावर-अंगावर सूज येणे इत्यादी
3. **श्वसन संबंधी**- दमा, थकवा, धाप लागणे, घोरणे इत्यादी
4. **अस्थिसंस्थे संबंधी**- स्पाँडिलायसिस, सांधदुखी, हालचालींवर परिणाम, पाठीला रग लागणे, दात व हिरड्या यांची तक्रार इत्यादी
5. **मज्जासंस्थे संबंधी**- स्वभाव, विचार, डोकेदुखी, विस्मरण, शरीरचा ढाचा बदलणे, झोपेची तक्रार, तळवे गरम इत्यादी
6. **स्नायू संबंधी**- अंगदुखी, मूत्रावेग न आवरणे, शरीराला बाक येणे, पाय दुखणे इत्यादी.
7. **हार्मोन संस्थे संबंधी**- पाळीच्या तक्रारी, अकाली ऋतुसमाप्ती, प्रजोतपादनात अडथळे, मधुमेह, वजनवाढ, कमी वनज, थायरॉईड इत्यादी
8. **प्रतिकारशक्ती संबंधी**- वारंवार इन्फेक्शन, ताप, सर्दी, खोकला, घसा, कान, नाक, डोळे यांचे प्रश्न, त्वचेची तक्रार, ॲलर्जी इत्यादी

या सर्व यंत्रणा कार्यक्षम आणि पूर्णपणे कार्यरत असणं म्हणजेच तंदुरूस्त/आरोग्य चांगलं असणं शरीरात होमोस्टॅटिल वातावरण राखणं, शरीरात घडणा-या घडामोडी आणि शरीरात असणारी विविध द्रव्यं आणि त्यांचचं रसायन या दोन शास्त्रांनुसार निष्कर्ष काढून वरील यादी तयार केली आहे. लहानांपासून थोरांपर्यंत सर्वांना हो लक्षणं लागू पडतात.

आरोग्य व जीवनसत्त्वे (A, B, C, D, E, K)

२. **अ जीवनसत्त्व**

रातांधळेपणा हा 'अ' जीवनसत्त्वाचा अभाव स्पष्टपणे दाखवणारा रोग आहे. 1913 साली शास्त्रज्ञांनी 'अ' जीवनसत्त्व स्निग्ध पदार्थात विरघळणारे म्हणून जाहीर केले. वाढीसाठी आणि जगण्यासाठी अत्यावश्यक असा हा आहार घटक आहे.

रोजची गरज - पुरूष 2400 मि. ग्रॅम, स्त्री 2400 मि .ग्रॅम, मूल 1600-2400 मि. ग्रॅम, बाळ 1200 मि. ग्रॅम

'अ' जीवनसत्त्वाचे महत्त्वाचे कार्य आहे डोळे आणि दृष्टी यांची निगा राखणे शिवाय शरीराच्या वाढीसाठी, पुनरूत्पादनासाठी आणि सर्वसाधारण आरोग्यासाठी ते आवश्यक असते

धान्ये व डाळी, भाज्या व कठीण कवचाची फळे, मांस, अंडी, दूध, दुधाचे पदार्थ, तेल व तूप इत्यादीतून मिळते.

3. **ब जीवनसत्त्व**- इनेसिटॉल हा 'ब' जीवनसत्त्व गटातील घटक आहे. इनेसिटॉलचे खडे चवीला गोड असतात. शरीरामध्ये स्निग्ध पदार्थ वाहून नेण्यासाठी इनोसिटॉल अत्यंत आवश्यक असते. मेंदूच्या पेशींचे पोषण

करण्यासाठी इनोसिटॉलची गरज असते. इनोसिटॉलमुळे रक्तातील कोलेस्टेरॉलची पातळी खाली येते. केस निरोगी व गळणे थांबवण्याचे काम करते.

यकृत, गायीचा मेंदू, व हृदय, यीस्ट, बीन्स, द्राक्षे, गहू, गुळाची काकवी, शेंगदाणे, कोबी यातून मिळेल.

रोजची गरज - पुरूष 1000 मि. ग्रा., स्त्री 1000 मि. ग्रा., मूल 550 मि. ग्रा.

इनोसिटॉलच्या अभावामुळे डोक्याला चाई नावाचा रोग होतो, इसब हा त्वचारोग होतो.

4. **ई जीवनसत्त्व**- शरीरातील पेशींचे कार्य सुरळीत चालू ठेवणे हे 'ई' जीवनसत्त्वाचे महत्त्वाचे काम आहे. 'ई' जीवनसत्त्व हे प्रजोत्पादनासाठी शारीरिक उत्साहासाठी अत्यंत आवश्यक आहे. 'ई' जीवनसत्त्वामुळे रक्ताच्या गाठी विरघळतात.

   गव्हाच्या कोंडयापासून काढलेले तेल, सनफ्लॉवर, सूर्यफुलाच्या बिया, सोयाबीन तेल, अंडी, लोणी, मोड आलेली कडधान्ये, इत्यादी मध्ये भरपूर 'ई' जीवनसत्त्व आहे.

   रोजची गरज - पुरुष 15 मि. ग्रा., स्त्री 12 मि. ग्रा., मूल 8.3 मि. ग्रा., बाळ 4.5 मि. ग्रा.

   'ई' जीवनसत्त्वाच्या अभावामुळे सूक्ष्म रक्तवाहिन्या कमजोर होतात, त्यामुळे हृदयविकार, फुप्फुसांचे विकार, पक्षाघात इत्यादी विकार होतात. 'ई' जीवनसत्त्वाच्या अभावामुळे नपुंसकपणा येतो.

5. **के जीवनसत्त्व**- 1935 साली डॅम शास्त्रज्ञ यांनी 'के' जीवनसत्त्वाचा शोध लावला. 'के' हे स्निग्ध द्रव्यात

विरघळणारे जीवनसत्त्व आहे. यकृतात 'के' जीवनसत्त्व साठवले जाते

शरीरांतर्गत आणि बाह्य रक्तस्त्राव थांबविण्याचे काम 'के' जीवनसत्त्व करते.

कोबी, फ्लॉवर, दही, सोयाबीन यांत भरपूर तर गहू यात कमी प्रमाणात 'के' जीवनसत्त्व असते. माणसांच्या आतडयांमधले जीवाणू 'के' जीवनसत्त्व पण तयार करतात.

'के' जीवनसत्त्वाच्या अभावामुळे जखमेतून सुरू झालेला रक्तस्त्राव लवकर थांबत नाही.

रोजची गरज - पुरुष 70-140 मा. ग्रा., स्त्री 70-140 मा. ग्रा., मूल 35-75 मा. ग्रा.

6. **क (c) जीवनसत्त्व**- 'क' जीवनसत्त्वाचे सर्वात महत्त्वाचे काम म्हणजे कोलॅजेन नावाचा घटक तयार करणे. हे कोलॅजेन तयार झाले नाही तर कुठलीही जखम भरून यायला वेळ लागतो. शरीराला हे जीवनसत्त्व ताजेपणा व हलकेपणा देते आणि सहनशक्ती वाढवते.

फळे आणि भाज्या यातून प्रामुख्याने हे जीवनसत्त्व मिळते. संत्री, मोसंबी, लिंबू, पपई यात जास्त प्रमाणात 'क' जीवनसत्त्व आढळते.

'क' जीवनसत्त्वाच्या अभावामुळे हिरडया सुजतात, नाजुक होतात. सूक्ष्म रक्तवाहिन्या कमजोर होतात. 'क' जीवनसत्त्वाचा दीर्घकाळ अभाव असल्यास स्कर्व्ही हा रोग होतो.

रोजची गरज - पुरुष 40 मि. ग्रा., स्त्री 40 मि. ग्रा., बाळांतीण 80 मि. ग्रा., मूल 40 मि. ग्रा., बाळ 25 मि.ग्रा.

7. **ड जीवनसत्त्व**- हे सूर्यप्रकाशाचे जीवनसत्त्व आहे. लहान मुलांना मुडदूस किंवा रिकेटस या रोगाला प्रतिबंध करणारे अत्यंत आवश्यक असे हे जीवनसत्त्व आहे. यकृत, त्वचा, मेंदू आणि हाडे यांत त्यांचा साठा असतो.

   अन्नपदार्थामधील कॅल्शियम, गंधक आणि इतर खनिज पदार्थाचे पचन होण्यासाठी 'ड' जीवनसत्त्वाची मदत लागते. मुलांमध्ये दात आणि हाडे बळकट होण्यासाठी 'ड' जीवनसत्त्वाची गरज असते. त्वचेवर शरीराच्या सूर्यप्रकाश पडला की 'ड' जीवनसत्त्व तयार होते. मासे, तूप, अंडी, लोणी, यात आहे.

   रोजचीगरज - पुरुष 09 मि. ग्रा., स्त्री 09 मि. ग्रा., मूल 09 मि. ग्रा.

8. **'बी-१' जीवनसत्त्व (थायमिन)**- थायमिन शरीराच्या वाढीला मदत करते. हृदयाच्या स्नायूनां ते संरक्षण देते आणि बुद्धीला चालना देते. रक्ताभिसरण सुधारते आणि त्वचा निरोगी राहते. थकवा घालवते, शक्ती वाढवते.

   गहू, तांदूळ, ओट्स, यात 'बी-1' जीवनसत्त्व जास्त आहे. सोयाबीनमध्ये ते भरपूर प्रमाणात असते. अननस, पिस्ता, शेंगदाणे यांत ते असते.

   भूक मंदावणे, अपचन, दीर्घकालीन बद्धकोष्ठता, वजन कमी होणे, मानसिक दौर्बल्य आणि निद्रानाश अशी लक्षणे दिसतात.

   रोजची गरज - पुरुष 1.3 मि. ग्रा., स्त्री 1.0 मि. ग्रा., मूल 1.1 मि. ग्रा., बाळ 50 मि.ग्रा. हे प्रत्येकाच्या वजनाच्या प्रत्येक किलोस या प्रमाणात असावे.

9. **'बी-२' जीवनसत्त्व (रिबोफ्लेविन)**- शरीराच्या वाढीसाठी आणि आरोग्यासाठी रिबोफ्लेविन आवश्यक असते. इतर जीवनसत्त्वांबरोबर ते कर्बोदके, प्रथिने आणि स्निग्ध पदार्थ यांच्या पचनासाठी मदत करते.

भाज्या, मांस यात आहे. हिरव्या भाज्या, बीट, गाजर, पपई, सिताफळ, अंडी, दूध, खवा यात आहे.

डोळे तांबारलेले दिसतात, प्रकाश सहन होत नाही. डोळ्यांची आग, खाज येते, तोंड येते, जीभ खरखरीत होते, ओठ फुटतात, केस व त्वचा तेलकट, नखे सहज तुटतात.

'बी-2' अभावी रक्तक्षय आणि मोतीबिंदू होई शकतो.

रोजची गरज - पुरुष 1.5 मि. ग्रा., स्त्री 1.2 मि. ग्रा., मूले 1.3 मि. ग्रा., बाळ 60 मा. ग्रा. वजनाच्या प्रत्येक किलोस.

10. **'बी-३' जीवनसत्त्व (निआसिन)**- रक्ताभिसरणासाठी आणि संज्ञावाहिन्यांचे काम सुरळीत चालू ठेवण्यासाठी गरज आहे. 'बी-3' मुळे पचनसंस्थेचे व पोषणाचे काम योग्य पद्धतीने होते.

गाईचे दूध, गहू, तांदूळ, शेंगदाणे, सनफ्लॉवर बिया, बदाम, हिरव्या पालेभाज्या, मांस व मासे.

जिभेवर थर साचणे, तोंड चरचरीत होणे, चिडचिड होणे, उदास वाटणे, त्वचेचे विकार, जुलाब, विस्मरण, निद्रानाश, डोकेदुखी, अपचन आणि रक्तक्षय

रोजची गरज - पुरुष 1.5 मि. ग्रा., स्त्री 1.2 मि. ग्रा., मूले 1.3 मि. ग्रा., (वजनाच्या प्रत्येक किलास), बाळे 60 मा. ग्रा.

11. **'बी-५' जीवनसत्त्व (पँटोथेनिक ॲसिड)**
12. **'बी-६' जीवनसत्त्व (पायरिडॉक्झिन)**
13. **'बी-८' जीवनसत्त्व (बायोटिन)**
14. **'बी-९' जीवनसत्त्व (फॉलिक ॲसिड)**
15. **'बी-१२' जीवनसत्त्व (सायानोकोबालॅमिन)**

संदर्भ

1. गाडगीळ स्वाती (2006), आरोग्य शिक्षण, सुविचार प्रकाशन मंडळ, पुणे, पहिली आवृत्ती, पृष्ठ - 9-38
2. बाखरू हरी कृष्णा (2009), आरोग्यदायी जीवनसत्त्वे, रोशन प्रकाशन, पुणे, पहिली आवृत्ती, पृष्ठ - 15-72
3. कारवारकर मालती (2012), जंक फूड की स्वास्थ्य सौंदर्य? मैत्रेय प्रकाशन, क्र. 52, मुम्बई, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ संख्या - 47-79
4. दिवेकर ऋतुजा (2009), डोण्ट लूज युवर माइण्ड लूज युवर वेट, अमेय प्रकाशन, पुणे

संविदाध्यापक (शारीरिक शिक्षा)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि.)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
विद्याविहार, (पूर्व) मुम्बई - ७७

★★★

Role of "C-Language" To Develop A Computer Programs

Miss Vaishali Nivdunge

C Is A General-Purpose, High-Level Language That Was Originally Developed By Dennis M. Ritchie.C Was Invented To Write An Operating System Called UNIX. C Is A Successor Of B Language Which Was Introduced Around The Early 1970s. C Constant have two types Primary Constant And Secondary Constant .In Primary Constant have Integer, Floating Point, Character ,Looping Statement And Branching Statement. In Secondary Constant Have Array, Pointer, String, Structure, Union, Enum, and File Handling

Histroy of c:

In 1966 international group created a langugae "ALGOL". ALGOL gave concept of structured programming to the computer science community. Martine Richards develop a language "BCPL" in 1967, BCPL is called as basic combined programming language. In 1970 KEN THOMPSON develop a langugae "B". Dennis Ritchie develop a language "Traditional C" in 1972. In 1978 Karnighan and Richards develop a language "K&R C". In 1989 ANSI Committee (American National Stanadard Institute) develop a language "ANSI C".ISO Committee (International Standard Organization) develop "ISO C" in 1990. Standardization committee develop a language "C99 " in 1999.This is a histroy of c.

Why use C:

C language is syntax based, poratble ,flexible language.

It is very simple, fast and efficient.

C language is a compile based, platform dependent language

Structure oriented, case sensitive language. That is the reason we can use c language. C have many features.

Structure of a c program.

Let us look at a simple code that would print the "addition of two numbers":

```
#include<stdio.h>   /*  standard input oputpout */
#include<conio.h> /* console input optput*/ header files
void main()   /* function */
{     /*start of the program */
int a,b,sum;   /* local varibale declaration */
clrscr();   /* clear the screen */
printf("enter any two numbers");
scanf("%d%d",&a,&b);
sum=a+b;
printf("sum of two numbers=%d",sum);   /* formated input */
getch();
}  /* program enclosed within curley brackets */
```

Let us take a look at the various parts of the above program:

1. The first line of the program #include is a preprocessor command, which tells a c compiler to include stdio.h file before going to actual compilation.
2. The void main() is the main function where the program execution begins.
3. Comment lines /*...*/ will be ignored by the compiler and it has been put to add additional comments in the program
4. The printf(...) Is another function available in c which causes the message "enter any two numbers to be displayed on the screen.
5. getch() close the program.

Opeartors:

1. Arithmetic Operators
2. Relational Operators
3. Logical Operators
4. Assignment Operators

5. Increment & Decrement Operators
6. Conditional Operators
7. Bitwise Operator
8. Special Operator

Decision Making & Branching Statement

1) Simple If Statement
2) Else….If Statement
3) Nested Else….If Statement
4) Else….If Ladder

Simple If Statement:-

Syntax: If(Test Expression)

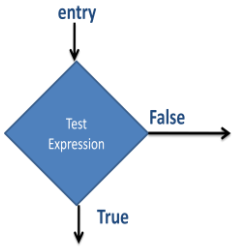

Flowchart Of Simple If Statement

IF ELSE Statement

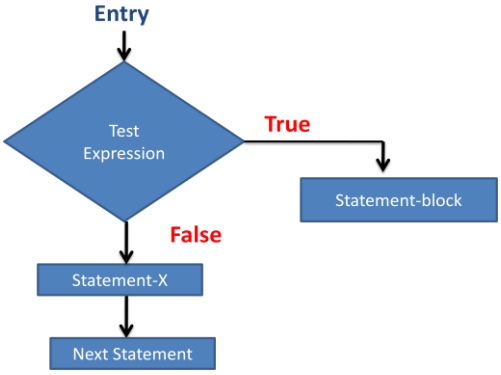

3)ELSE IF LADDER

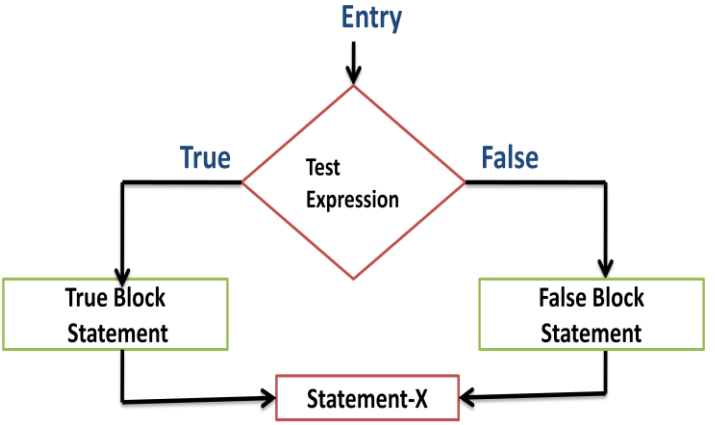

4)NESTED IF_ELSE LADDER

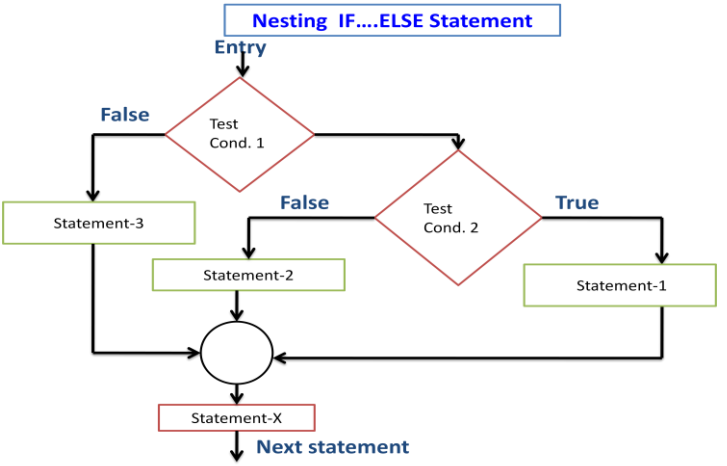

Looping Statement

1. **While Statement:**
2. **Do...While Statement:**
3. **For Statement:**

ARRAY:

Array is collection of same data type item
Array is devided into 3 parts:
One dimentional array:
Two dimentional array:
Multidimentional array:

Pointer:

Pointer is a variable which can store address of another variable.

e..g. Int*p;
& symbol is used to get value of the address of the variable
* symbol is used to get the value of the variable

STRING

A string is simply an array of characters which is terminated by a null character '\0' which shows the end of the string. String are always enclosed by the double quotes in c.

char my_name[5]={'A', 'K', 'K', 'I', '\0'};
We can also write the above statement as follows:
char my _name []="AKKI"

STRUCTURE:

Structure is a varibale that gives facility of storing data of different data types in one variable.structure are variable that have several parts,each part of the object can have different types.

UNION:

C union is also like structure,i.e. collection of different data types which are grouped together.each element in a union is called member. Union and structure both are same,except allocating memory for their members.structure alloactes storage space for each member seperately.

REFERNCES:

1. **C TUTORIALS POINT.COM**
2. **WWW.GOOGLE.COM**
3. **ANSI C**

Contract Teacher (Compter Teacher)
Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.)
K. J. Somaiya Sanskrit Vidyapeeth
Vidyavihar, Mumbai – 400 077

★★★

आयुर्वेद में योग का स्वरूप

✍ डा. रविकुमार (शास्त्री)

आयुर्वेद यद्यपि जीवन विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र के रूप में जाना जाता है, तथापि मनोविज्ञान और आध्यात्मिक विषयों की भी उसमें व्यापकता है । यही कारण है कि केवल प्रसंगवश ही नहीं, अपितु व्यवस्थित रूप से मानस शास्त्र एवं आध्यात्मिक विषयों का विवेचन आयुर्वेद में मिलता है । सम्पूर्ण आयुर्वेद भारतीय दार्शनिक विचार धारा से अनुप्राणित होने के कारण तथा मानस व्यापार एवं आध्यात्मिक विषयों से आयुर्वेदीय चिकित्सा का निकटतम सम्बन्ध होने से इन विषयों को व्यवस्थित विवेचन और प्रतिपादन आयुर्वेद मे स्वाभाविक है । आयुर्वेद ने भारतीय दर्शन शास्त्र एवं अध्यात्म शास्त्र से अनेक महत्वपूर्ण कणों को लेकर आत्मसात किया है । योग शास्त्र स्वयं एक दार्शनिक विचार पद्धति और अध्यात्म विद्या की अनुशीलनात्मक परम्परा का समन्वित रूप है । अतः उसके द्वारा आयुर्वेद को प्रभावित किया जाना सहज स्वभाविक है । यही कारण है कि आयुर्वेद में यत्र तत्र योगशास्त्र के बीज पर्याप्त रूप से मिलते है ।

मन और आत्मा के विषय में गंभीर अनुचिन्तनात्मक विचार योगशास्त्र में मिलते है । मन और आत्मा सम्बन्धि ऐसा कोई विषय नहीं है जिसे योगशास्त्र में प्रतिपादित नही किया गया हो । क्योंकि योग और मोक्ष का पूरा सम्बन्ध मन और आत्मा से है । आयुर्वेद में योग और मोक्ष को मन और आत्मा से सम्बन्धित मानते हुए इन दोनों का पर्याप्त विवेचन किया गया है । आयुर्वेद में बहुत ही सुन्दर ढंग से योग का स्वरूप बतलाया गया है, जो निम्न प्रकार है -

आत्मेन्द्रिश्मनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रर्वतते।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे॥
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः॥

–चरकसंहिता,शारीरस्थान 1/138–139

आत्मा, इन्द्रिय, मन और अर्थ (इन्द्रियों के विषय) के सन्निकर्ष से सुख और दुःख दोनों होते है। जब मन आत्मा में स्थिर हो जाता है तो उसके द्वारा कोई कार्य न होने (अनारम्भ होने) से सुख और दुःख निवृत्त (निवर्तित) हो जाते है, तब शरीर के साथ मन वशी हो जाता है । योग को जानने वाले (योगीजन) इसे ही योग कहते है।

यहां महर्षि चरक ने मन के 'वशित्व' होने को योग की संज्ञा दी है । संसार में मन को सबसे अधिक चंचल माना गया है। सभी प्रकार के दुःख और सुख का मूल एकमात्र म नही है । अहित विषयों में इन्द्रियों के माध्यम से मन की प्रवृत्ति होना दुःख का और हित विषयों में प्रवृत्ति होना सुख का कारण है । आयुर्वेद में एवं दर्शन शास्त्र में सुखानुभूति को अनुकुलवेदना और दुखानुभूति को प्रतिकुल वेदना माना गया है । मन की अस्थिरता और चंचलता के कारण विभिन्न विषयों उसकी प्रवृत्ति होती रहती है जिससे आत्मा में कर्मसंचय होता है और उसके परिणाम स्वरूप सुख या दुःख की प्रवृत्ति होती है । सतत अभ्यास और साधना के द्वारा मन जब आत्मा में स्थिर हो जाता है तब उसकी समस्त प्रवृत्तियां बन्द हो जाती है और उसकी निश्चलता तथा अनारम्भ (कोई कार्य न करने की प्रवृत्ति) के कारण सुख और दुःख का अनुभव भी नही होता । इसी को मन का 'वशित्व' (वश में) होना कहते है । इस अवस्था में अनुकूल वेदना (सुख) और

प्रतिकुल वेदना (दु:ख) का सर्वथा अभाव हो जाता है । इसे ही 'योग' कहा जाता है।

योग के स्वरूप विवेचन के संदर्भ में महर्षि चरक का यह कथन विशेष महत्वपूर्ण है कि योग में केवल मन ही वशी नही होता है अपितु शरीर भी वशी होता है (सशरीरस्य (मनस:) वशित्वं चोपजायते) । इसका कारण यह है कि उनके (चरक के) अनुसार योग की स्थिति में सभी प्रकार की वेदनाओं, चाहें वे अनुकूल वेदना (सुख) हो अथवा प्रतिकुल वेदना (दु:ख) हों का अभाव हो जाता है । सभी वेदनाओं का अधिष्ठान मन और सेन्द्रिय शरीर होता है । योगावस्था में सभी वेदनाओं का अवर्तन (नाश) केवल मन में ही नहीं होता अपितु शरीर में भी होता है । अत: उस अवस्था में मन और शरीर दोनों का वशित्व होना आवश्यक है । इस प्रसंग में चरक का निम्न कथन दृष्टव्य है -

वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः।
केशलोमनखाग्राक्मलद्रवगुणैविना ॥
योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम् ।

-चरकसंहिता,शारीरस्थान 1/136-137

केश, लोम, नख का अग्रभाग, अन्न का मल (पुरीष) द्रवों (मूत्र-स्वेद) के गुणों को छोड़कर इन्द्रिय सहित सम्पूर्ण शरीर और मन सभी वेदनाओं (सुख-दु:ख) का अधिष्ठान है । योग और मोक्ष में सभी वेदनाओं का नाश हो जाता है ।

महर्षि पतंजलि ने चित्त (मन) की पांच वृत्तियाँ बतलाई है और उनका निरोध करने को योग की संज्ञा दी है । उनके अनुसार अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब चित्त की वृत्तियों के रूक जाने से सुख या दु:ख जनक किसी भी कार्य का आरम्भ नहीं होता । इस अवस्था को

ही महर्षि चरक ने आत्मा में मन की स्थिरता और शरीर एवं मन का वशीभूत होना कहा है।

पूर्व प्रकरण में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि आयुर्वेद के अनुसार योग सिद्धि के अनन्तर हो आत्मा की मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति होती है । अत: योग और मोक्ष ये दोनों सर्वथा भिन्न अवस्थायें है । योगावस्था में तो मनुष्य का शरीर भी विद्यमान रहता है, शरीर में मन, इन्द्रिया और आत्मा भी विद्यमान रहती है । किन्तु शरीर और मन ये दोनों आत्मा के वशीभूत रहते है । इसके विपरित मोक्ष में तो न शरीर होता है और न मन व इन्द्रिया होती है । आत्मा इन सबसे सर्वथा मुक्त हो जाता हैं। आयुर्वेद में मोक्ष का स्वरूप निम्न प्रकार से बतलाया गया है -

मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत्कर्मसंक्षयात् ।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते ॥

- चरक संहिता, शारीरस्थान 1/142

मन से रज और तम का अभाव होने से, बलवान कर्मों का क्षय होने से सभी प्रकार के कर्म संयोग से आत्मा का जो वियोग है वही मोक्ष है और उसे ही 'अपुर्नभव' कहते है ।

योग की समाधि अवस्था में मन से रज और तम का सर्वथा अभाव हो जाता है और मन में केवल सत्व गुण का उत्कर्ष रहता है । तब आरम्भ नही होने से नवीन कर्म का संयोग या बन्धन आत्मा में नहीं होता है तथा समाधि के द्वारा एवं ज्ञानोत्कर्ष से पर्वोपार्जित बलवान कर्मों का क्षय हो जाता है । इस प्रकार अंत में जब सभी संयोग-कर्मबन्धनों से आत्मा रहित हो जाता है तो वह संसार से छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है - यही मोक्ष है । उस आत्मा में सभी कर्म नि:शेष हो जाते है, अत: उसे कर्मफल भोग के निमित्त पुन: इस संसार में नहीं जाना पड़ता है, अर्थात् पुन: उसे शरीर धारण करने हेतु जन्म नहीं धारण करना

पड़ता है और जन्म धारण नहीं करने से मरण भी उसका नहीं होता है । पुनः पुनः जन्म धारण नही होने से यह अपुर्नभव कहलाता है।

आयुर्वेद के अनुसार उपर्युक्त रूप से सप्रतिपादित मोक्ष का साधन योग ही है । योगियो ने योग को ही मोक्ष का उत्तम साधन बतलाया है । यहीं भाव महर्षि चरक द्वारा और अधिक स्पष्टता से व्यक्त किया गया है। यथा-

एतत्तदेकमयनं मुर्क्तमोक्षस्य दर्शितम् ।
तत्वस्मृतिबलं, येन गता न पुनरागता ॥
अयनं पुनराख्यातमेतद्योगस्य योगिभिः ।
संख्यातधर्मः सांख्यैश्च मुक्तैर्मोक्षस्य चायनम् ॥

-चरकसंहिता, शारीरस्थान 1/150-151

जीवन मुक्त पुरूषों के द्वारा मोक्ष का यह मार्ग बतलाया गया है । जिस व्यक्ति के द्वारा योग ज्ञान या योग साधना से तत्व स्मृति का बल प्राप्त कर लिया गया है तब इस मार्ग से जाने वाले अर्थात् योग सिद्धि और मोक्ष प्राप्ति करने वाले वे लोग पुनः (जन्म लेकर) इस संसार में नही आये । योगी जनों के द्वारा यह तत्वस्मृति बल योग का मार्ग कहा गया है और धर्म के मर्म को जानने वाले परमज्ञानी मुक्त पुरूषों के द्वारा यह (तत्व स्मृति बल) मोक्ष का अयन (मार्ग) कहा गया है ।

आयुर्वेद में जहां योग को मुक्ति का साधन बतलाया गया है वहां मुक्ति से पूर्व योगी को प्राप्त होने वांली विभिन्न सिद्धियों का उल्लेख भी किया गया है । तात्पर्य यह है कि जब साधक अष्टांग योग के द्वारा साधना में तत्पर होता है तब अन्तिम अवस्था अर्थात् योग की सिद्धि होने पर योगी में कुछ इस प्रकार के विशिष्ट लक्षण उत्पन्न होते है जो सामान्य मनुष्य में साधारणतः नही पाए जाते । इसे योगियों की स्वाभाविक शक्ति या योग बल

कहा जाता है । आयुर्वेद के अनुसार आठ प्रकार बल या विशेष शक्ति योग सिद्धि होने पर योगियों को प्राप्त होती है जो निम्न प्रकार है –

आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया ।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृति कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् ।
शुद्धसत्वसमाधानात्तत् सर्वमुपजायते ॥

–चरकसंहिता, शारीरस्थान 1/140–141

आवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेष्ठा करना), चेतसो ज्ञानम् (दूसरे के मन की बात को जानना), अर्थानां छन्दतः क्रिया (शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध इन इन्द्रियार्थो को स्वेच्छापूर्वक प्रवृत्त करना) अर्थात् योगी जिस अर्थ को प्राप्त करना चाहे अथवा जिस अर्थ का ज्ञान प्राप्त करना चाहे अपने मन के अनुकूल उसका ज्ञान भी प्राप्त हो जाए । दृष्टि (अतीन्द्रिय वस्तुओं को देखने की शक्ति), श्रोत्र (श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा अभीष्ट शब्दों चाहे वे कितनी ही दूर के क्यों न हो का ग्रहण करना) स्मृति (स्मरणशक्ति की वैष्ट्ययुक्त सम्पन्नता), कान्ति (शरीर का विशिष्ट दैवी कान्ति से युक्त होना) और इष्टतश्चाप्यदर्शनम् (अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर को गोपनीय बना लेना और फिर प्रकट करनाऋ यह आठ प्रकार का ईष्ठवरीय बल योगियों को प्राप्त होता है। योगाभ्यास के द्वारा सत्व द्धमनऋ के शुद्ध होने (रजोगुण और तमोगुण के रहित होने) से उपर्युक्त सभी प्रकार की सिद्धि योगियों को प्राप्त होती है ।

वस्तुतः योगियों की ये स्वाभाविक शक्ति है जो योगसिद्धि होने पर स्वतः प्रकट हो जाती है । या यों कहा जा सकता हैं कि साधनारत साधक को जब योग की सिद्धि होती है तो इन लक्षणों से उसका परिचय मिलता है । यहां आयुर्वेद शास्त्र

में योगियों की केवल अष्टविध सिद्धियों का वर्णन किया गया है, किन्तु योग शास्त्र में तेईस (23) सिद्धियां बतलाई गई है जो निम्न प्रकार है –

पाँच शुद्ध सिद्धियाँ-

त्रिकालज्ञत्व, अद्वन्द्व, परिचिताद्यभिज्ञता, अग्न्यर्काम्बुविषादि का स्तंभ और अपराजय।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्व परचिताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां स्तम्भश्चाप्यपराजयेः॥

गुण प्रधान दस सिद्धियां –

अस्मिन् देहेऽनूर्मिमत्वं दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवित्वं कामरूपं परकायप्रवेशः
स्वेच्छामृत्युर्देवक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसिद्धिराज्ञासिद्धिरव्याहतगतिः।

आठ ब्रह्मप्रधानसिद्धियाँ-

''अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्यम्, ईशित्वं, वशित्वं कामावसायिता च ।''

इस प्रकार योगशास्त्र में योग सिद्धियों का उल्लेख मिलता है । आयुर्वेद में जो योग सिद्धियां बतलाई गई है वे वस्तुतः सामान्य योग सिद्धियां है जिन्हें साधक अल्पायास के द्वारा ही योग सिद्ध कर लेने पर प्राप्त कर सकता है । अतः योगियों के जो सामान्य कार्य होते है उनके अनुसार ही यहां योगियों का बल बतलाया गया है। इससे ऐसा लगता है कि यह अष्टविध बल योग सिद्धि से भिन्न होना चाहिए।

श्री जे. जे. टी. विश्वविद्यालय,
झुन्झुनू (राज.)

★★★

कबीरदास के भक्तिकाव्य में विद्रोह भावना की प्रासंगिकता

श्रीमती पूजा हेमकुमार अलापुरिया

कबीरदास जी का व्यक्तित्व न केवल हिन्दी संत कवियों में अपितु पूरे हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में तुलसीदास जी को छोड़कर इतना प्रतिभाशाली और महापण्डित व्यक्तित्व वाला दूसरा कोई कवि नहीं हुआ । वे अपने समय के एक महान संत समाज सुधारक और कवि थे । हिन्दुओं के लिए वैष्णव भक्त, मुसलमानों के लिए पीर, सिक्खों के लिए भगत, कबीर पंथियों के लिए अवतार, आधुनिक राष्ट्रवादितायों के लिए हिन्दू मुस्लिम एक के प्रतीक, नव वेदान्तवादियों के लिए विश्व धर्म या मानव धर्म प्रवर्तक, प्रगतिशील तत्त्वों की दृष्टि में समाज सुधारक, सामाजिक दृष्टि के कमजोर वर्ग के पक्षधर है कबीर ।

कबीर निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक हैं । निर्गुण निराकार ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए कबीर ने 'राम' को आधार बनाया । उनके राम दशरथ सुत राम से भिन्न थे । कबीर के राम बोद्धों के शून्य ब्रह्म के प्रतिरूप हैं क्योंकि कबीर का युग का एक व्यापक और कटु संघर्ष का युग था । जीवन के सभी क्षेत्रों में संघर्ष था । धर्मगत, जातिगत, वर्णगत संघर्ष चरमसीमा पर थी। कबीर की दृष्टि में मानव-मानव सब बराबर थे, यदि किसी प्रकार का भेदभाव था तो मुल्ला और पंडितों के द्वारा फैलाया हुआ था । सामाजिक जीवन ऊँच-नीच की भावना तथा आपसी द्वेष की आग से जल रहा था । हिन्दू और मुसलमानों का संघर्ष केवल एक राजनैतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि वह एक सांस्कृतिक संघर्ष था ।

कबीर के भक्ति काव्य के अनुसार सामाजिक स्तर पर दो संघर्ष थे एक तो हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक जीवन का संघर्ष तो दूसरी और हिन्दु समाज के भीतर का सामाजिक क्षोभ ।

समाज में व्याप्त छुआछूत व अस्पृश्यता की भावना कबीर को कतई पसंद नहीं थी, परन्तु कबीर को हिन्दु और मुस्लिम दोनों धर्म माना करते थे । इसी का फायदा उठाते हुए उन्होंने विद्रोह का रास्ता अपनाया । कबीर मंडनवादी कम खंडनवादी विचारों को जो ऊँच-नीच की व्यवस्था को दृढता पूर्वक स्वीकार करती थी । उनका कहना था कि सभी मनुष्य का जन्म समान रूप से होता है, सभी में भगवान का वास है, फिर यह ऊँच-नीच कैसी?

बामन के घर बामन जाया
और मारग ह्वै क्यों नहीं आया।

कबीर के राम निर्गुण राम थे और वे मूर्ति पूजा के विरोधी थे । वे कहते कि वर्ण व्यवस्था के कारण मंदिरों की स्थापना हुई है और इन्हें समाज में छुआछूत का कारण ब्राह्मणों ने ही बनाया । एक मंदिर में ब्राह्मण ही जा सकता है अन्य शूद्र जाति का व्यक्ति नहीं । इस पर कबीर अपनी विद्रोह भावना प्रकट करते हुए कहते हैं -

पाहन पूजै हरि मिले, मैं पूजूँ पहाड़ ।
घर की चक्की कोई न पूजै, जाको पीस्या खाय ॥

कबीर ने मूर्ति पूजा की अपेक्षा पत्थर की चक्की को पूजना अधिक उचित समझा है क्योंकि मूर्ति और चक्की दोनों का निर्माण पत्थर से ही हुआ है लेकिन मूर्ति पर फल फूल मिठठान आदि के चढ़ावे से भगवान प्रसन्न होकर मनोकामनाओं को तुरन्त पूरा नहीं करते तथा भक्त के पास भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं होता कि उसके द्वारा ईश्वर के समक्ष प्रकट की गई

मनोकामना पूर्ण होगी भी या नहीं । वहीं दूसरी ओर पत्थर की चक्की बिना किसी चढ़ावे के ही मनुष्य की भूख का निदान कर देती है । वैसे भी समाज में मानसिकता का विकास कुछ इस प्रकार हो चुका है कि उसे प्रत्यक्ष और परोक्ष में अंतर को आँकना मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर प्रतीत होता है । इतना ही नहीं उन्होंने मुसलमानों की नमाज पढने की पद्धति के लिए भी विरोध भावना व्यक्त की है ।

कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई चुनाय ।
ता चढि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥

चिल्ला चिल्लाकर खुदा की प्रार्थना करना कबीर को बिल्कुल पसंद नहीं था । उनकी मान्यता है कि, खुदा तो सर्वत्र है, आत्मा के द्वारा चुपचाप मनन करना चाहिए । मुर्गे की तरह बाँग देना उचित नहीं । कबीर जी ने मुसलमानों के रोजा रखने की शैलो का भी सख्त विरोध किया है । वे मानते हैं कि उपवास रखनेवाला व्यक्ति हिंसावादी नहीं हो सकता है क्योंकि –

दिन में रोजा रखत हो, राति हनत हो गाई ।
यह तो खुन वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाई ॥

कबीर ने कभी हिन्दु और मुसलमानों का समन्वय का प्रयत्न नहीं किया यह तथ्य पूर्णतया संगत है किन्तु कबीर ने दोनों धर्मो के पारस्परिक विरोधों को दूर करने का प्रयास किया । विरोध दूर करने का तात्पर्य यह नहीं कि वे उनका समन्वय करना चाहते थे । समन्वय में तो सभी मतों या विचारों को सही रूप में स्वीकार किया जाता है । कबीर जी की अंतर्भेदिनी दृष्टि ने इस बात की पृष्टि कर ली थी कि दोष मुसलमानों में ही नहीं अपितु हिन्दुओं के धर्मगत विश्वासों में भी थे । इसी कारण उन्होंने मुसलमानों के साथ – साथ हिन्दुओं के पाखंडों का भी प्रबल खंडन किया । कबीर के लिए मानव जीवन का लक्ष्य है मुक्ति

या ब्रह्म की प्राप्ति । फलस्वरूप उन्होंने जीवन के सभी मूल्यों को इसी दृष्टिकोण से झाँका है । भौतिक मूल्यों को उन्होंने शुद्ध रूप में स्वीकार किया है । उन्होंने साधुओं, संतों और सज्जनों की बड़ी प्रशंसा की है । उनका आदर्श संन्यास या संन्यासी बना नहीं था, वरन साधु या सज्जन बनना था । इस संसार की विषमता, आडंबर और भेदभाव के विरोध में कबीर ने सरल प्रेममय या सामाजिक जीवन अपनाने का संदेश देते हुए कहा है कि –

कबीरा खडा बाजार में, माँगे सबकी खेर ।
न काहू की दोस्ती, ना काहू से बेर ॥

और दूसरी तरफ विद्रोही वाणी की धारा को प्रबल करते हुए उपदेश देते है ।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पडा रहा हो म्यान ॥

कबीर भक्त थे, भक्ति करते हुए समाज सुधारक बने । इसलिए उन्हें विद्रोही बनना पड़ा । यह काल की माँग थी । वर्तमान में भी हमें विद्रोही कबीर की आवश्यकता है भले ही हम आधुनिक युग में साँस ले रहे हैं लेकिन आज भी समाज और समाज के ठेकेदारों की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है । डिजिटल इंडिया और न्यू इंडिया जैसे तथ्यों का अनुकरण कर देश और समाज के विकास की बात करते हैं लेकिन कभी आधुनिकता की दौड़ में दकियानूसी मानसिकता पर विचार किया है । मानव स्वचालित यन्त्रों का गुलाम बन पूरी तरह इन यंत्रों पर निर्भर हो गया है । विश्व, देश या समाज को बदलने से पहले खुद की सोच को बदलना अनिवार्य है । स्वतंत्र भारत भी अपनी आजादी के 70 वर्षों की लम्बी यात्रा तय कर इस चरम सीमा पर पहुँच चुका है कि देश विश्व स्तर पर टक्कर लेने की क्षमता रखता है, आयात निर्यात किसी शहर या राज्य की

सीमाओं तक ही सीमित नहीं है वरन आयात निर्यात और लेन देन भी विश्व स्तर पर होता है । मगर समाज आज भी पूर्ववत सामाजिक बुराईयों में लिपटा सा दिखाई देता है । लगभग 600 वर्ष पूर्व जिन असामाजिक मुद्दों को कबीर ने अपनी वाणी के द्वारा उकेरा था वे आज भी विद्यमान है । लोग बदले मगर समाज आज भी वहीं खडा प्रतीत होता है ।

शोध छात्रा
श्रीजगदीशप्रसाद झाबरमल
टोबडेवाला विश्वविद्यालय
विद्यानगरी, चुरूरोड, झुन्झुन,
राजस्थान - ३३३००१ ।

★★★

Jhumpa Lahiri and Globalization of Culture in "Interpreter of Maladies".

✍ **Smt Sheetal Nage**

Abstract

Globalization of culture, we can see in all the areas of the life like education, sports, media, films, technology and literature etc. Because of the exposure to Information Technology the whole world is incorporating in a new culture which is the juxtaposition of various identities. Cultural globalization involves the formation of shared norms and knowledge with which people associate their individual and collective cultural identities. It brings increasing interconnectedness among different populations and cultures. The objective of this paper is (to present globalization of culture in positive light) to take review of changing trends in literature with the special view of globalization of culture through the Jhumpa Lahiri's "Interpreter of Maladies".

Introduction

Jhumpa Lahiri, a second generation Indian-American immigrant female writer, was born in London and raised in New York by her Bengali parents.

Interpreter of Maladies (1999) is a collection of nine stories, which won the Pulitzar Prize for Fiction in 2000. It was chosen as the New Yorker's Best Debut of the year. It was selected as the New York Times Notable Book as well The Publishers Weekly's Best Book.

Jhumpa Lahiri, an Indian American, new generation's writer who has seen and experienced the transitions of the world because the infusion of Information Technology, resulted post globalization. So it is very obvious that it has reflected in her works. She uses her Indian American cultural background in her novels like 'Namesake', 'Hell-Haven', 'In other worlds' etc. and in her short stories also. As a writer of Globalization era, Jhumpa Lahiri's themes revolve around the juxtaposition of the cultures.

Globalization of culture

With the technological and media explosion, in the past quarter century, the world, in terms of Marhshall Mcluhan has become a "Global Village". The process of globalization has accelerated in the recent years with the booming computer technology, the dismantling of trade barriers and the expanding political and economic power of multinational corporations.

Global interdependence has further led to cultural diversification throughout the world, which Arjun Appadurai termed as "cultural homogenisation" and "cultural hetrogenisation". Cultural homogenization referring to the absorption of cultures, creates a multicultural or hybrid identity, whereas, cultural heterogenisation referring to indigenization creates an ethnic identity or the 'self' not ready to mingle with the other.

Roland Robertson explains that globalization compress the world into a single entity making it essential for people to locate their new global existence. In the new global set up societies and individuals have to identify themselves in a new way that it different from their original identity. The identity construction comes naturally with the cultural compression of the world.

The features of cultural globalization can be seen in the works of Jhumpa Lahiri. In this paper the reference has been taken of the title short story and 'This Blessed House' from the short story collection "Interpreter of Maladies" by Jhumpa Lahiri, that depicts the cultural globalization.

The title short story of the volume, 'Interpreter of Maladies', illustrates the interaction of two cultures, American and Indian. Although both Mr. and Mrs. Das have Indian parents, they were born and raised in United States and dress and behave as Americans. They do not speak Indian languages and in India they act like tourists rather than Indian people returning home.

This aspect of the story illustrates the theme of immigration and cultural assimilation. Mr. and Mrs. Das are

second- generation immigrants. Usually people in that category either experience some conflict about their cultural identity or identify themselves with the only country they have known. Mr. and Mrs. Das fall under the second category as they are foreigners in their native land and identify foreign land as their native land. It reveals the Das family's attitude to India as one of snobbish distance and their interest in India as tourist's interest. This can be seen when Mr. Das asked the guide to stop the car so he can take a photographs of monkeys which Mr. Das's children never seen outside of the zoo. Then he takes a picture of an emaciated man sitting on top of a cart of grain sacks, which is very common scene in Indian villages but unusual to Mr. Das, represents not the poverty but stark reality of India. Jumpha Lahiri presents an analogy of the barefoot man and monkeys. The monkeys are also photographed by Mr. Das as collectible. Despite the racial resemblance with the barefoot man, Mr. Das does not identify with him; instead he proudly promotes his American identity.

The another side of story reflects an Indian's fascination for the Western World and its inhabitants, through the character of Mr. Kapasi. But when the inner reality surfaces, the protagonist become disillusioned and soon distances himself from such ostentatious lifestyle.

The story talks about immigrant Indians, their nostalgia, their lifestyle and the fixation that Indians have with the Western World. It also brings to light that the lifestyles of Mr. and Mrs. Das hinge on the foundations of co-operation and not on cordiality. But whatever the matter they want to keep their marriage intact and for that they are struggling a lot especially Mrs. Das who hides the secret form her husband that Bobby is not his son. Through the urge of communication Mrs. Das reveals this secret to Mr. Kapasi. Revealing secret to Mr. Kapasi is a catharsis to Mrs. Das she uses Mr. Kapasi as a safety valve. She wants to lessen the burden which bothering her for last eight years.

In the another story from the volume, "Interpreter of Maladies", 'This Blessed House', Lahiri has projected two

different aspects of lives of Indian- American Snjeev and American-Indian Twinkle. Their marriage is based on the "Indian traditional marriage scheme", which shows their Indian roots. Sanjeev is a former M.I.T. student and now runs a successful business, whereas Twinkle is a student at Stanford University, working on Irish poetry for her thesis. Her thesis topic reveals that she is ready to fit in the concept of citizen of world as her identity is American, descent from India and nativity as Bengali and she is studying Irish poetry. The new house, they have moved into, contains Christian paraphernalia left behind by the former Christian owners. Twinkle shows an obsessive fascination for the Christian objects, which offends Sanjeev. The opening scene, presents their two different approached regarding their cultural identity.

As an Indian-American Sanjeev wants to preserve his Bengali identity. In order to accomplish his gloried vision of cultural preservation, he ties knot with Twinkle, assuming her the embodiment of Indian culture. In contrast Twinkle's anti normative attitude is reflected in her westernized behavior as she smokes cigarettes, drinks wine and does not like to cook Indian food.

During the housewarming party Snjeev introduces Twinkle to Douglas, one of his colleagues by her real name Tanima. But Twinkle, prefers to be called Twinkle, a name that is westernized. She is attracted to the Christian paraphernalia, as she does not view the statues as sacred and pious. They are merely "beautiful", "spectacular and cute" for her. The Christian objects for which she has a fascination, present her attitude of "culture other". Her exotic vision of Christian objects, restricts her mute acceptance of and assimilation into American culture.

Twinkle becomes Lahiri's example of an adult who is able to negotiate cultural intermingling, both in her own body/identity and in her interactions with others. It is Twinkle who most positively negotiates her identity as an American of Indian descent; in contrast her husband struggles with this negotiation. One can observe Twinkle's personality as her Indianness is muted but not absent,

present but not foregrounded as artificial. As a second generation of Indian in America she has adopted the American culture as well as her Indian descent allows her to follow Indian culture thus juxtaposition of both the cultures the new culture emerge that we can see in her manners and behavior.

Conclusion

Jhumpa Lahiri's characters as the American Indian always see themselves in between zones, conscious of the place left behind, and craving for new identity in multi-cultural America. She deploys items of Bengali culture and imposes them as a reality in multi-cultural America in her stories. The hybrid condition of a second generation immigrant's attitude should be, in Lahiri's view, an attitude of cultural translation and interpretation of the adopted culture and the culture of the motherland.

Research Scholar
UttarBharti Sangh College,
Bandra (East)

★★★

मराठीभाषेचा अर्थविचार

✍श्री. सुरेश चेमटे

अर्थ समजतो तो शब्दाच्या सहाय्याने (कोठे खुणांनी - करपल्लवी नेत्रपल्लवी आदि) अर्थ व शब्द यांचे साहचर्य कितीही जुळविण्याचा प्रयत्न केला तरी तंतोतंत ते साहचर्य काही जुळत नाही शब्द म्हणजे अर्थाला किंवा त्याच्याही पलीकडच्या विचाराला अडकविलेल्या खुणा आहेत. त्या खुणावरून वस्तूचा बोध करून घ्यावयाचा असतो.शब्दाचा व अर्थाचा परस्पर सम्बन्ध अध्यासरूप आहे. (येथे विद्वानां मध्ये मतभेद आहेत). शब्दाच्या अर्थात आणखी पुष्कळ तर्हेची हालचाल होते कधी अर्थसंकोच होतो तर कधी अर्थविस्तार होतो. कधी कधी आपली वैज्ञानिक उन्नती शब्दावर परिणाम करते. अर्थविज्ञानाच्या दृष्टीतून मराठीभाषेचा अर्थ विचार हे शोधपत्र येथे प्रस्तुत आहे.

अर्थ -

1. ज्या शब्दाचे उच्चारण केल्यावर ज्या अर्थाची प्रतीति होते तोच त्या शब्दाचा अर्थ होय.
2. जो अर्थ ज्या शब्दाबरोबर वाच्यरूप अन्वय सामर्थ्यातून प्राप्त होतो तोच त्या शब्दाचा अर्थ होय.
3. ज्या शब्दाचा ज्या अर्थामध्ये वृद्धव्यवहारात संकेत केलेला आहे तोच त्या शब्दाचा अर्थ होय अथवा ज्या शब्दातून ज्या अर्थाची प्रतीति होय तोच त्याचा अर्थ होय.
4. लोकांमध्ये उच्चरित शब्दातून जे अवबोध्य आहे तोच अर्थ आहे.
5. काही बोलल्यावर त्यातून जे काही कळते त्यालाच अर्थ म्हणतात.

शब्दाचे अर्थ तीन प्रकारचे असतात (काव्यशास्त्रच्या दृष्टीने). एक वाच्यार्थ, दुसरा लक्ष्यार्थ आणि तिसरा व्यंग्यार्थ.

वाच्यार्थ

कोणत्याहि शब्दाचा उच्चार करतांक्षणींच जो लक्ष्यार्थ मनांत येतो त्याला वाच्यार्थ असें नांव आहे. शब्द आपला वाच्यार्थ आपल्या अभिधा या शक्तीने प्रकट करतो. उदा. कोकिळ, चंद्र, सूर्य इत्यादि शब्दात.

लक्ष्यार्थ

व्यवहारातील पुष्कळसे शब्द आपण जरी त्यांच्या ठरलेल्या अर्थानेच म्हणजे वाच्यार्थानेच वापरीत असलो तरी, काही वेळा आपण असे शब्दप्रयोग करतो की त्या शब्दांचा वाच्यार्थ घेऊन वाक्याचा अर्थ लावू गेल्यास तो लागत नाही. म्हणजे तो संभवनीय नसतो उदा. पातेल उकळते आहे, या वाक्यातील पातेले हा शब्द वाच्यार्थाने घेऊन भागणार नाही. कारण पातेले कसे उकळू शकेल अशा सारख्या ठिकाणी दुसरा योग्य अर्थ घेतल्यावाचून गत्यंतर राहात नाही. जो दुसरा अर्थ घेतल्याने वाक्याचा अर्थ नीटपणे लागतो. त्याला त्या शब्दाचा लक्ष्यार्थ म्हणतात.

व्यंग्यार्थ

मुख्यार्थाचा बोध झाला असतांही ज्या शक्तीने मुख्यार्थापेक्षां काहींतरी अधिक किंवा केव्हां केव्हां निराळा अर्थ प्रतीत होतो ती शक्ती व्यञ्जना, त्या शक्तीद्वारे प्रतीपादित अर्थ व्यंग्यार्थ. उदा. सूर्य अस्तास गेला.

काही जन तात्पर्यार्थ पण मानतात.

अर्थ निर्णयाची साधने -

संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोधीपणा, अर्थ, प्रकरण, लिंग, दुसर्याशब्दाचें सान्निध्य, सामर्थ्य,औचित्य, देश, काल, व्यक्ति आणि स्वर इतक्या गोष्टी अर्थनिर्णयाच्या कामीं उपयोगी पडतात.

आतां क्रमाने यांची उदाहरणें घेऊं.

संयोग-

शंख-चक्र धारण करणारा हरि या वाक्यांत हरि शब्दाचा अर्थ विष्णु असाच घेतला पाहिजे. कारण, शंख-चक्र आणि विष्णु यांचा नेहमीं संयोग असतो. तसा संयोग इंद्र, सिंह वानर यांचा नाहीं. त्यामुळें संयोग या कारणानें इथें हरि शब्दाचा विष्णु असाच अर्थ झाला.

वियोग-

शंख-चक्र न घेतलेला हरि असें म्हटले तरीहि हरि शब्दाचा अर्थ विष्णु असाच होतो. कारण शंख-चक्र आणि विष्णु यांचा संयोग आपणांस ठाऊक असतो, त्याचा या ठिकाणीं वियोग झाला आहे. शंख-चक्रांचा वियोग दाखविल्यामुळे इथें विष्णु असाच अर्थ निश्चित झाला.

साहचर्य-

राम शब्दाचे दोन अर्थ आहेत. एक भार्गवराम आणि दुसरा दाशरथि राम. पण राम आणि लक्ष्मण या वाक्यांतील राम शब्दाचा अर्थ दाशरथि राम असाच घेतला पाहिजे. कारण, लक्ष्मण शब्दाच्या जोडीनें तो शब्द आला आहे म्हणून. या ठिकाणीं अर्थनिश्चय होण्यासाठीं साहचर्य हें कारण झालं.

विरोधीपणा-

नकुल शब्दाचे दोन अर्थ आहेत. एक मुंगूस आणि दुसरा माद्रीचा थोरला मुलगा. पण अहि-नकुल असा शब्दप्रयोग आल्यास तिथें त्या शब्दाचा अर्थ पांडवांतला नकुल असा न घेतां मुंगूस असाच घेतला पाहिजे. कारण नकुल हा शब्द सर्पांचा विरोधी म्हणून आलेला आहे. पांडवांतल्या नकुलाचा आणि सर्पांचा विरोधीभाव नाहीं. तर तो मुंगूस आणि सर्प यांचाच आहे. म्हणून

विरोधीपणा या कारणामुळें या ठिकाणीं नकुल शब्दाचा अर्थ निश्चय झाला.

अर्थप्रयोजन-

पांडुरंग शब्दाला दोन अर्थ आहेत. पांडुरंग म्हणजे विठोबा आणि पांडुरंग म्हणजे पांढरा रंग. भवमुक्त होण्यासाठी पांडुरंगाला शरण जा असें वाक्य आलें तर त्या ठिकाणीं पांडुरंग शब्दाचा श्रीविठोबा हाच अर्थ घेतला पाहिजे. पांढरा रंग असा घेतां येणार नाहीं. कारण पांढरा रंग हा कांही मोक्षाचें प्रयोजन होऊं शकत नाहीं.

प्रकरण-

राजा या शब्दाचे सुद्धां दोन अर्थ होऊं शकतात. राजा म्हणजे भूपति आणि राजा म्हणजे एखादा त्या नांवाचा माणूस. एखाद्या लघुकथेंत किंवा अन्य कोणत्या तरी प्रसंगी राजा असा शब्द आला तर विषय अथवा प्रकरण कोणचें चाललें आहे तें पाहून मागच्यापुढच्या संदर्भावरून त्या शब्दाचा अर्थ घ्यावा लागेल.

लिंग-

लिंग म्हणजे संभवणारें विशेषण. दाता कर्ण असें वाक्य आलें तर कर्ण शब्दाचा कोणता अर्थ स्वीकारायचा कान असा कीं कुंतीचा प्रथम पुत्र असा अशा वेळीं वाक्यांतलें विशेषण कोणाला लागू पडतें तें पाहावें लागेल. दाता हें विशेषण कानाला कांहीं संभवत नाहीं. अर्थात् या ठिकाणीं कुंतीपुत्र असाच अर्थ घेणें इष्ट आहे.

अन्य शब्दाचें सान्निध्य-

कंसाला मारणाऱ्या देवाला नमस्कार कर या ठिकाणीं तेहतीस कोटी देवांपैकीं कोणता देव म्हणजे श्रीकृष्ण. हा जो अर्थ आपण घेतला तो कंस शब्दाच्या सान्निध्यावरून घेतला.

सामर्थ्य-

पय पिऊन ताकदवान झालेला पुरुष या वाक्यांतल्या पय शब्दाचा अर्थ दूध असाच घेणें भाग पडतें. पय पाणी पिऊन कांही कोणाला ताकद येऊं शकणार नाही. ताकद वाढवण्याचें सामर्थ्य पाण्यांत नसून दुधांतच आहे.

औचित्य-

औचित्य म्हणजे प्रकृत विषयाला अनूकुल असा धर्म. उदाहरणार्थ, निष्कलंक या शब्दाचे दोन अर्थ होतात. एक स्वच्छ आणि दुसरा पवित्र. केलें वरी उदर पांडुर निष्कलंक या ठिकाणीं त्या शब्दाचा अर्थ स्वच्छ, कसलाही डाग नसलेलें असाच घेतला पाहिजे. कारण पवित्र असा अर्थ त्या ठिकाणों उचित नाहीं.

देश-

कर्नाटक प्रांतांत राव, पंत या शब्दांऐवजी स्वामी म्हणण्याचा प्रघात आहे. यासाठीं आपण त्या देशांत गेल्यावर स्वामी या शब्दाचा अर्थ संन्यासी असा समजतां कामा नये. कारण देशपरत्वें त्याचा अर्थ बदललेला आहे.

काल-

चित्रभानु हें अग्नि आणि सूर्य या दोघांनाहि नांव आहे. एखाद्यानें रात्रीच्या वेळीं म्हटलें कीं, चित्रभानूचा प्रकाश पडला आहे तर चित्रभानु शब्दाचा अर्थ अग्नि असाच घेतला पाहिजे. कारण रात्रीं सूर्य कधींहि नसतोच.

स्वर-

विशिष्ट प्रकारचे हेल काढून एखादा शब्द उच्चारल्यास त्याचाहि चालू अर्थापेक्षां निराळाच अर्थ घ्यावा लागतो. छान केलंस बरं का आणि छान केलंस हो या दोन वाक्यांतील छान शब्दाचा अर्थ कसा भिन्न होतो तें कोणालाहि कळून येईल. असो

अनेकार्थक शब्द आले असतां अर्थनिर्णय करण्याविषयीचीं इतकी गमकें साहित्य शास्त्रज्ञांनीं मानलेलीं आहेत.

आणखी काहीं अर्थज्ञान साधने –

व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण, ज्ञातशब्दाची सन्निधि, वाक्य, अन्वयव्यतिरेक, शब्दाध्याहार, युक्तिसंगतता, ध्वनिविशेष, आंगिकचेष्टा (उदा. अंगुलीनिर्देश), अभिनय, व्याख्यान, टीका, टिप्पणी, व्याख्या, लिपि शब्दस्मारक अथवा शब्दानुमापक रेखाविशेष), चिह्नविशेष इत्यादि अनेक अर्थज्ञानाची साधने लोकात प्रसिद्ध आहेत. त्यांचा उपयोग स्वाभाविकपणे मराठीत पण होतो.

अर्थविकासाची दिशा

१. **अर्थविस्तार** –

एखादा शब्द जितका मूळ अर्थ दाखवतो त्याच्यापेक्षा अधिक अर्थ त्या शब्दाने घ्यावा लागतो.

गोसावी म्हणजे गोस्वामी गाईचा धनी पण हल्ली कशाचाहि धनी नसला तरी किंवा असला तरी त्याला गोसावी म्हणतात.

पैसेवाला म्हणजे केवळ पैसे किंवा नाणें जवळ असलेला माणूसच नव्हे तर पैसे अडका, सोनें दागिने, घरवाडी, जमीन जुमला वगैरे जवळ असणारा इतका व्यापक अर्थ त्यांत येतो.

गोठा म्हणजे फक्त गाई बांधण्याचें ठिकाण परंतु म्हशी, बैल, घोडे जरी बांधले तरी तो गोठाच असतो.

कांदबरी म्हणजे बाण कवीच्या कथानकांतील एका नायिकेचें नांव. परंतु आता सर्व रम्य कथांना हा शब्द लावतात.

पानपत्रावळ्यामध्ये पान आणि पत्रावळी शिवाय दुसर्या पुष्कळ गोष्टींचा समावेश होतो. समाहारद्वन्द्व म्हणून जेवढे शब्द आहेत तितक्या सर्वात् अर्थाची वाढच झालेली असते

प्रवीण म्हणजे वीणावादनात निष्णात (मूळ अर्थ) परंतु आता कोणत्याही कामात निष्णात.(विस्तृत अर्थ)

२. **अर्थसंकोच** -

अर्थसंकोच मूळातला शब्दार्थ व्यापक असताना तो कमी होण्याची प्रक्रिया

पार्थिव म्हणजे पृथ्वीसंबंधी, परंतु त्याचा राजा पृथ्वीवर राज्य करणारा इतकाच अर्थ संकुचित केला आहे.

गांठोडें म्हणजे कांहीहि गुंडाळून ठेवलेलें, परंतु तो गांठोडें बाळगून आहे ह्यांत गांठोडें म्हणजे पैशाचें किंवा दागिन्याचें एवढाच अर्थ अभिप्रेत आहे.

पाखरू पक्षी हे दोन्ही एकाच अर्थाचेच शब्द आहेत त्याचा अर्थ पंख असणारे प्राणी पण पाखरू म्हणजे लहान पक्षी आणि पक्षी म्हणजे मोठी पक्षी मृग जुना अर्थ (मौलिक अर्थ) प्राणी, नवा (संकुचित) अर्थ हरीण. वेणा जुना अर्थ (मौलिक अर्थ) वेदना, नवा (संकुचित) अर्थ प्रसूतिवेदना हीं सर्व अर्थसंकोचाचीं उदाहरणें होत.

३. **अर्थापकर्ष**

अवतार हा शब्द देवादिकांच्या अवतरणा विषयी योजिला जात असे . पण मराठीत त्याला गबाळा, बावळट असा अर्थ प्राप्त झाला आहे. संस्कृत श्यालक या शब्दाचा मूळ अर्थ मेहुणा असा आहे पण त्यापासून

मराठीत आलेला साला हा शब्द एक शिवी बनलेला आहे.

४. **अर्थान्तर (अर्थादेश)**

एखादा शब्द जेव्हा आपल्या जुन्या भाषिक सन्दर्भाचा त्याग करून संपूर्ण पणे नव्या भाषिक संदर्भात वापरला जाऊ लागतो . तेव्हा अर्थान्तराची प्रक्रिया घडून येते. उदा. पाषण्ड मौलिकार्थ साधुसम्प्रदाय, आदिष्ट (नवा) अर्थ आडम्बरादि.

5. **अर्थोत्कर्ष** –

फारशी मध्ये असामी या शब्दाचा अर्थ फक्त माणूस असा आहे. तर मराठीत तो बडा माणूस या अर्थी योजिला आहे. तीच गोष्ट चीज शब्दाची. त्याचा मूळ अर्थ वस्तू एवढाच होता. पण मराठीत त्याचा उपयोग उत्कृष्ट व वैशिष्ट्यपूर्ण अशा वस्तूच्या संदर्भात करण्यात येतो.

अर्थाचे चार प्रकार (व्याकरणादिशास्त्राच्या दृष्टीतून)

रूढार्थ –

कांही शब्दांचा अर्थ रूढीने कायमचा ठरविलेला असतो त्यांला रूढार्थ असे म्हणतात उदा. – अश्व, कर्ण यांचा अर्थ

यौगिकार्थ –

काही शब्द असे असतात की त्याचा अर्थ त्यांच्यांतील धातूच्या अर्थाप्रमाणे लागतो ह्यांना यौगिकार्थ म्हणतात उदा. पाचक, लोहार, विणकरी यांचा अर्थ.

योगरूढार्थ –

वरील दोन्ही तत्त्वे ज्या शब्दांत आढळून येतात त्याना योगरूढार्थ म्हणतात ह्यामध्ये व्युत्पत्तीचा एक व रूढीचा एक असे दोन्ही अर्थ असतात उदा. पंकज साप वगैरे शब्दाचा अर्थ.

योगिकारूढार्थ –

त्यामध्ये उद्‌भिज अश्वगंधा वगैरे सारखे शब्द येतात.

अर्थभेद 1. पदार्थ वाक्यार्थ 2. बाह्यार्थ बौद्धार्थ 3. आनुभाविक अर्थ, स्मारक अर्थ 4. यथार्थ अयथार्थ 5. जात्यर्थ, गुणार्थ, क्रियार्थ, यदृच्छार्थ 6. मुख्यार्थ गौणार्थ 7. पारमार्थिक अर्थ, व्यवहारिक अर्थ, प्रातीतिक अर्थ इत्यादि अर्थाचे अनेक भेद संस्कृत प्रमाणेच आहेत.

शब्दसंक्षेप

संकेताक्षर-

वर्तमान युगात शब्द संक्षेपाचे संकेताक्षराचे प्रमाण लोकामध्ये अधिक वाढलेले आहे. विशेषत: मोबाईलवर गप्पा (वार्तालाप) करतांना उदा. काव्यप्रकाश - का. प्र.(शब्द संक्षेप (संकेताक्षर) इत्यादि रूपाने तरीपण त्याचा अर्थ प्रतीति वर फारसा परिणाम नाही.अर्थात नगण्य रूपाने आहे.

सारांश

मराठीतील प्राय: अर्थनिश्चयाची साधाने, अर्थाचे प्रकार, इत्यादि अर्थविषय संस्कृत प्रमाणेच आहेत.

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. मराठी भाषा उद्‌गम व विकास - कुलकर्णी, कृष्णाजी पांडुरंग, The International Book Service Publishers, प्रथमावृत्ति, 1933
2. फारसी-मराठी अनुबंध, भाषिक, वाङ्‌मयीन व सांस्कृतिक - डॉ. यू. म. पठाण, सचिव महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई मराठी ग्रंथसंग्रहालय इमारत, तिसरा मजला, 172, मुंबई मराठी ग्रंथसंग्रहालय मार्ग, दादर (पूर्व), मुंबई - 400014, प्रथमावृत्ती, जुलै 2007

3. अभिनव काव्यप्रकाश - प्रा. रा. श्री. जोग, स. कृ. पाध्ये, व्हीनस् बुक्स्टॉल, अप्पाबळवंत चौक, पुणें 2, आवृत्ति दुसरी, 1946
4. साहित्यशास्त्र - गणेश सदाशिवशास्त्री लेले, सौ. कमलाबाई अधिकारी, मालक - अधिकारी प्रकाशन, 396, नारायण पेठ, पुणें नं 2, आवृत्ति तिसरी, 1 जानेवारी 1963
5. सुलभ काव्यशास्त्र - महादेवशास्त्री जोशी, द. र. कोपर्डेकर, प्रकाश प्रकाशन, 529 सदाशिव, पुणें-2, 1948
6. यादवकालीन मराठी भाषा (भाषाशास्त्रीय अभ्यास) - डॉ. शं. गो. तुळपुळे, केशव भिकाजी ढवळे, श्रीसमर्थ-सदन,गिरगाव, मुंबई-1, प्रथमावृत्ति, 1942
7. आधुनिक भाषाविज्ञान आणि मराठीभाषा - डॉ. दादा गोरे, कैलास पब्लिकेशन्स, औरंगपुरा, औरंगाबाद, दुसरी सुधाारित आवृत्ती 2005

अन्तर्जालकानि (websites)

1. www.sanskritdoucuments.org
2. www.dli.serc.iisc.ernet.in
3. www.archive.org
4. www.oudl.osmania.ac.in

शोधच्छात्र (व्याकरणविभाग)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा.वि)
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ,
विद्याविहार, मुम्बई - ४०० ०७७

★★★

स्वास्थ्य एवं पातञ्जल योग

श्री. सत्यनारायण सिंह

आज का मानव अनेक प्रकार की व्याधियों से ग्रसित है। इन सब व्याधियों का कारण मनुष्य स्वयं है । हमारे शास्त्रों में सब प्रकार की व्याधियों से बचने के उपाय बताए गये है । सभा उपायों में सर्वोत्तम उपाय महर्षि पतञ्जली ने योगदर्शन में बताया है । 'योग से श्रेष्ठ कोई पुण्य तथा कल्याणप्रद नहीं है ।'[1]

योग शब्द का सामान्य अर्थ होता है, जोडना । किन्तु योग शब्द का मुख्य अर्थ है आत्मा को परमात्मा से जोडना । योग शब्द सुनकर मन में प्रश्न उठता है कि, योग क्या है ? **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**[2] इति अर्थात् हमारे मन के विचारों का निरोध ही योग है । योग के आठ अंग बताए गए है । यथा - यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा- ध्यान-समाधि ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।[3]

योग के इन अष्ट अङ्गो का अच्छी प्रकार से पालन करने वाला व्यक्ति सर्वविध (शारीरिक, मानसिक) व्याधियों से मुक्त रहता है ।

महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अङ्गो में सर्वप्रथम 'यम' के विषय में बताया है। 'अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह्यमा:'[4] यम-नियम व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से अनुशासित करते हैं । ये इन्द्रियों एवं चित्त में बनने वाली विषयवासना एवं उद्वेगों पर नियन्त्रण रखते है । सभी प्रकार के सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य की प्राप्ति यम-नियम से होती है। यथा -

1. **अहिंसा** - सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों द्रोह न करना अहिंसा है । जैसा व्यासभाष्य में कहा है - 'तत्राहिंसा

सर्वथा सवदा सर्वाभूतानामनभिद्रोहः ।[5] अर्थात मन, वचन तथा कार्य से किसी भी प्राणी को परूषभाषण, ताडन आदि द्वारा पीडा पहुँचाना हिंसा है ।

2. **सत्य** - यम में बताए गए आदेशों का पालन करना बहुत कठिन होता है । वाणी और मन का यथार्थत्व सत्य कहा जाता है । 'सत्यं यर्था - वाङ्मनसे ।' जैसा प्रमाणरूप इन्द्रियों से प्रत्यक्ष किया हो तथा जो तर्क से अनुमानित हो और आगम से सुना गया हो वैसा ही मन और वाणी से भी तो वह वाणी सत्य कहीं जाती है । जैसा कि कहा भी गया है - सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न सत्यमप्रियम् ।। व्यासभाष्येऽपि यथा - 'यथादृष्टं यथानुमतिं यथा श्रुतं तथा वाङ्गमनश्च ।'[6] इति
3. **अस्तेय** - चोरी का अभाव अत्ये कहलाला है । शास्त्रोक्त विधि के बिना अन्य के द्रव्य को ग्रहण करना अस्तेय है। इसके विपरित मन से भी किसी के द्रव्य को ग्रहण करने की इच्छा का अभाव अस्तेय कहा जाता है ।
4. **ब्रह्मचर्य** - गृह्य इन्द्रियों के संयम को ब्रह्मचर्य कहते है । लेकिन गुह्य के साथ अन्य इन्द्रियों के संयम का भाव ही इसमें निहित है । क्योकि संयत गुह्य इन्द्रिय वाले ब्रह्मचारी के लिए स्त्रो सम्बन्धी दृष्टिपात भी निषिद्ध है। काम प्रवृत्ति बढानेवाले के लिए स्त्री सम्बन्धी दृष्टिपात भी निषिद्ध है । काम प्रवृत्ति बढानेवाले प्रकार, मसालायुक्त आहार, नशीली चीजों का सेवन, व्यसन, अश्लील पुस्तकों का अध्ययन एवं चिन्तन भी ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध बताया गया है । मिताहार से ब्रह्मचर्य पालन करना आसान होता है ।

5. **अपरिग्रह** – भोगसाधनों का स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है । **अपरिग्रहो भागसाधनानामनङ्कारः ।**[7] Possession van never bring happyness or contribute to a spritual life, it becomes a burden if one had no desire one is free. अहिंसादि पाँचों जो यम शब्द से कहने योग्य है योगाङ्ग रूप में बताए गए है ।

नियम

नियम पाँच प्रकार के बताए है । इन नियमों में शौच, संतोष, तपः, स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान की गणना होती है । अतः इनका पालन करना साधक के लिए अत्यावश्यक है ।

1. **शौच** – शौच दो प्रकार का होता है – बाह्य एवं आंतरिक । मिट्टी जलादि से शरीर का धोना बाह्य शौच कहलाता है । मैत्र्यादि के द्वारा चित्त के मलों का धोना अर्थात् राग, द्वेष, मद, मान, ईर्ष्या आदि से रहित होना आन्तरिक शौच कहलाता है ।[9]
2. **संतोष** – समीपस्थ भोग साधनों से अधिक प्राप्त करने की इच्छा न होना संतोष कहलाता है । अर्थात् जो हमारे पास उपलब्ध है उसी में तृप्त रहना, उससे अधिक प्राप्ति की इच्छा न करना ।[10]
3. **तप** – द्वंद्व सहन करना तप कहलाता है । द्वंद्व, क्षुधा, तृषा, सर्दी, गर्मी में किसी स्थान पर एक आसनप में मौन रूप से काष्ठ के समान स्थिर रहना तप कहलाता है ।
4. **स्वाध्याय** – मोक्ष विषयक शास्त्रों को पढना स्वाध्याय कहलाता है । ओंकारादि जप भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आते रहते है । स्वाध्याय करनेवाले साधन के मन में अनित्याभावना होनी चाहिए ।

5. **ईश्वरप्रणिधान** – परमात्मा को अपना सब कुछ अर्पण करना ही ईश्वरप्रणिधान कहलाता है । शय्या अथवा आसन पर बैठा हुआ व मार्ग में चलता हुआ अपने स्वरूप में स्थिर वितर्करूप जाल को नष्ट किए हुए संसार बीज के नाश का विचार करता हुआ नित्य परमात्मा में युक्त हुआ अमृत भोग का भागी होता है । अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है ।[11]

इसप्रकार पातञ्जल योगदर्शन में यम और नियम बताए गए है। जो हमारे आन्तरिक भावनाओं को प्रेरित करके उनपर नियन्त्रण बनाए रखने की प्रवृत्ति को बढावा देते है ।

यद्यपि योग के आठ अंगो का वर्णन किया गया है । आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-समाधि इनका अपना विशेष महत्त्व है । जैसे आसन और प्राणायाम का महत्त्व है । अभी बाबा रामदेव ने विश्व के सम्मुख प्रकट किया है । परन्तु यदि मानव आठों अंगो का पालन नहीं कर सकता तो यम-नियमों का अच्छी प्रकार से पालन करते हुए भी उत्तम स्वास्थ्य एवं मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । न केवल स्वास्थ्य अपितु यम नियमों का पालन करने मात्र से भ्रष्टाचार, व्यभिचार, आतंकवाद इत्यादि समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है । क्योंकि अहिंसा-सत्य-ब्रह्मचर्य-अस्तेय- अपरिग्रह, शौच, तप, संतोष, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान गुणों के द्वारा ही मनुष्य सभी बुराईयों से मुक्त हो सकता है ।

सन्दर्भ

1. योगशिखोपनिषद ।
2. पातञ्जल योगदर्शन 1.2 ।
3. पातञ्जलयोगदर्शन 2.29 ।
4. पातञ्जलयोगदर्शन 2.30 ।
5. व्यासभाष्यम् ।

6. व्यासभाष्यम् ।
7. भोजवृत्तिः 2.30 ।
8. Patanjali's Yogasutra 2.30.
9. पातञ्जल योगदर्शन साधनपाद ।
10. पातञ्जल योगदर्शन साधपनपाद ।
11. योगदर्शन ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. राजयोग, स्वामी विवेकानन्द ।
2. श्रीमद्भगवत्गीता ।
3. पातञ्जलयोगदर्शन ।
4. योग का महत्त्व ।
5. योगवाशिष्ठ ।
6. योगसूत्रव्यासभाष्य ।
7. योगसूत्रभोजवृत्ति ।
8. योगवार्त्तिक ।
9. मनुस्मृतिः ।
10. याज्ञवल्क्यस्मृति ।

शोधच्छात्र (साहित्य विभाग)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
विद्याविहार, मुम्बई ।

★★★

शारीरिक शिक्षा मे योग का महत्व

श्री जीतेन्द्र कुमार गुप्ता

हमारा शरीर दो प्रकार का है परिपक्व तथा अपरिपक्व । परिपक्व शरीर ही ज्ञान ग्रहण कर सकता है शरीर परिपक्व होना अर्थात रोग, शोक-रहित होना, आरोग्य सम्पन्न होना । सभी मनुष्य किसी न किसी व्याधियों से ग्रसित है कोई व्यक्ति अगर शारीरिक व्याधि से मुक्त हो तो भी वह मानसिक व्याधि से पीडित रहता है संसार की सुख भोग की सारी वस्तुएं उपलब्ध होने पर भी वह स्वेच्छापूर्वक उसका उपभोग नही कर सकता । हमें भाग्यवादी न बनकर विवेक तथा विचार द्वारा इन्द्रियों पर काबू करके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । विना कष्ट कुछ भी नही मिलेगा और अगर मिल भी जाए तो वह शाश्वत नही रहेगा । अगर अपना शरीर ही अपात्र एवं दुर्बल रहेगा तो किसी भी प्रकार से स्वास्थ्य तथा शान्ति-लाभ असंभव है ।

सेवाकार्य और शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वास्थ्य की आवश्यकता है ।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां, आरोग्यं मूल कारणम् ।

शरीर स्वास्थ्य अच्छा हो तो मानव किसी के दु:ख मे शामिल होकर उसके दु:ख को कम किया जा सकता है आपका व्यवहार एक दर्पण है जिसमे आपका प्रतिविम्ब दिखता है । सम्पूर्ण विश्व के द्वारा गौर्वान्वित हमारी भारतीय योग विद्या हम भारतवासियों के लिए अज्ञात नही । भारतीय रिषि मुनियों ने वह आत्मसात करके मानव-कल्याण के लिए उसका उपयोग किया है। हम भारतीयों में कोई भी व्यक्ति इस अमृततुल्य योग विद्या से अपरिचित नही रह सकता । भारत योग और अध्यात्म की

पुण्यभूमि है । इसी कारण ही पाश्चात्य देश हमारी ओर आशा और आदर्श की दृष्टी से देखते है । भारतीय योगविद्या के प्रति उनमें गहरा आकर्षण है । हमें अपने स्वास्थ्य के लिए क्या करना चाहिए इसकी खोज में हम मृगजल के पीछे भाग रहे है । योग संसारियों के लिए बहुत कठिन है । यह गलत धारणा हमारे भीतर बैठी है । यह हमारा अज्ञान ही है । संसाररुपी भठ्ठी मे सरीरिक और मानसिक तापों से मुक्त करने वाला उच्च मनोवृत्ति का विकास करके परमार्थ की ओर ले जाने वाला यह हठयोग ही है।

आज मानव का शरीर रोगग्रस्त व्याधिमन्दिर बना है । चित्त की चंचलता ने गतिमान वायु का रुप धाारण किया है । आरोग्य के साथ आयु भी क्षीण होती ज रही है । शारीरिक और मानसिक दुर्वलता बढती जा रही है । अनेक असाध्य व्याधियो का निर्माण होकर वित्तक्त व्यय बढने से दरिद्रता हमें मृत्यु की ओर खींच रही है । यह सब देखते हुए भी स्वास्थ्य प्रदान करने वाले योग का कुदरती इलाज न करना हमारा दुर्भाग्य ही है । बीमारी दूर करने के लिए हमारा आकर्षण दिन प्रतिदिन दवाइयों के प्रति बढता जा रहा है । जिससे स्वास्थ्य के बजाय शारीरिक हानियाँ हो रही है । आज के समय में हम लोग प्रकृति से जितना दूर होते जा रहे है उतनाही दुरूख मिल रहा है । आज के भागदौड़ की जिन्दगी में सभी को शारीरिक, मानसिक बिमारियों का सामना करना पड़ रहा है चाहे वह कोई वडा कर्मचारी, शिक्षक, नेता, चपरासी या एक आम आदमी हो। इन सभी को शारीरिक और मानसिक स्वस्थ्य चाहिये तो योग ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सन्तुलन किया जा सकता है । यथा-

षट्कर्म विधि द्वारा स्वस्थ्य - इसके अन्तर्गत धौति, बस्ती, नेति, कपालभाति, नौलि तथा त्राटक इनके द्वारा शरीर को शुद्ध किया जा सकता है।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्रातकम् नौलिकम् तथा ।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥ इति। ह. ठ.१/११

स्वास्थ्य के लिए षट्कर्म का योगी तथा रोगी दोनो के लिए असाधारण महत्व सिद्ध हुआ है । शरीर में कफ, पित्त, और मलादि का संचय होने से रोग पैदा होते है । इनको सन्तुलन नही करने पर स्वास्थ्य खराब होता है । 'सर्व रोगाः प्रजायन्ते जायन्ते मल संचयनम्' हठ योग द्वारा जीवन को आदर्शमय बनाया जा सकता है । 'हठ' शब्द हठ के योग से बना है जिसका अर्थ है 'ह' यानि सूर्य और 'ठ' यानि चन्द्र इन दोनो को जोड़ना ही योग है । इन दोनो नाडियों की सहायता से श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया द्वारा मानव की शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का विकास किया जा सकता है । श्वास-प्रश्वास की गति पर हमारे चित्त की एकाग्रता निर्भर है । गति जैसे-जैसे बढती है वैसे ही चित्त की गति बढती है जैसे-

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत । (हठयोग १/१)

अष्टांगयोग के द्वारा समाज और शरीर दोनों को स्वस्थ किया जा सकता है । अष्टांगयोग अर्थात - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान औरा समाधि ।

सर्वप्रथम यम का पालन करने के लिए बताया गया है क्योकि यमों का पालन करने से समाज मे विकृतियाँ दूर होगी । यम के पाँच तत्त्व है । जैसे - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमाः

नियम के पाँच तत्त्वो का अभ्यास करने से आत्मशुद्धि होती है ।

शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः । इति ।

आसन का नम्बर तीसरा है इसके पहले यम, नियम का पालन करने से आसन अच्छे से किये जा सकते है । आसन चार प्रकार से किये जाते है

1. पीठ के बल का आसन - उत्थिपादासन, साईकिलिंग, द्रोडासन, सर्वांगासन आदि ।
2. पेट के बल का आसन - शलभासन, धनुरासन, भुजंगासन, नौकासन आदि ।
3. बैठकर के आसन - गोमुखासन, अर्धमछेन्द्रासन, वज्रासन, पद्मासन आदि ।
4. खडे होकर के आसन - वृक्षासन, ताडासन, उटकटासन आदि ।

प्राणायाम के द्वारा श्वासों की गति पर नियन्त्रण किया जा सकता है तथा प्रत्याहार के द्वारा अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण किया जाता है ।

मानसिक शान्ति के लिए गायत्री मन्त्र का जाप और ओमकार का उच्चारण करके शान्त किया जाता है ।

ओंकार प्रभवा देवाः । ओंकार प्रभवा स्वरा ।
ओकार प्रभवं सर्व । त्रैलोक्य सचराचरम् ॥

निष्कर्ष-

शारीरिक शिक्षा में योग का बहुत ही महत्व है क्योकि योग के विना शरीर और मन को स्वस्थ नही रखा जा सकता है । शरीर और मन स्वस्थ रहने पर ही किसी प्रकार की शिक्षा को ग्रहण किया जा सकता है ।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. हठयोगप्रदीपिका, चौखम्बा विद्याभवन 1982 ।
2. पातंजल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।
3. शोध नवनीत, अन्तराष्ट्रिय शोध-पत्रिका, 1984 ।

4. योगमंथरसार, अम्बिकायोग कुटीर, थाना, 1981 ।
5. योगासन, श्री वेदान्त सेवासमीति, आसाराम आश्रम, अहमदाबाद ।
6. स्वास्थ्य योग शुद्धिकर्म, श्री अम्बिका योग कुटीर प्रकाशन थाणे ।
7. योगाभ्यास के मूल तत्व, 1986, प्रकाशक, श्री कच्छी कडवा पाटीदार, ज्ञाति ट्रस्ट मुम्बई ।
8. योग प्रकाश, मासिक पत्रिका, 1985, शंकर नगर, पोस्ट आफिस, नागपुर ।
9. योग प्रसाद, प्रकाशक अम्बिका योग, कुटीर ठाणे ।

शोधच्छात्र (साहित्य विभाग)
राष्ट्रिय संस्कत संस्थान
क. जे. सोमैया संस्कृत विद्यापीठ
विद्याविहार, मुम्बई ।

★★★